भरत का अन्तर्द्वन्द्व

झुके ही रहे, झुके ही रहे ।
न जाने कबतक भरत नरेश ।।
और जब उठे, उठे ही रहे ।
शान्ति के सागर भरत नरेश ।।

: रचयिता :
तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

भरत का अन्तर्द्वन्द्व

पहला अध्याय

(दोहा)

वीतरागता के धनी, सब जाने अरहन्त।
और अनन्तानन्दमय, सभी सिद्ध भगवन्त।। १।।

आचारज उवझाय अर, हैं जितने भी सन्त।
वन्दूँ बारम्बार मैं, आवे भव का अन्त।।२।।

भव-भव में ही भटकते, बीता काल अनन्त।
मन ही मन सोचें भरत, कैसे हो भव अन्त।।३।।

भरतराज दरबार में, बैठे थे सानन्द।
पूँछ रहे थे सभी से, कुशल क्षेम आनन्द।।४।।

प्रभो आपकी कृपा से, यत्र-तत्र-सर्वत्र।
कुशल क्षेम पूरी तरह, व्याप रही सर्वत्र।।५।।

मन्त्रीगण दे रहे थे, विगतवार सन्देश।
तभी अचानक सभा को, मिले तीन सन्देश।।६।।

(रेखता)

इधर आयुधशाला से अभी-अभी आया है इक सन्देश।
हुई है *चक्ररत्न* की प्राप्ति अरे रे सुनो सुनो भरतेश!।।
उधर अन्त:पुर से भी मिला अचानक एक सुखद सन्देश।
हुई है *पुत्ररत्न* की प्राप्ति हुआ सबको आनन्द विशेष।।७ ।।

इसी के बीच एक सन्देश देवतागण भी लाये हैं।
श्री वृषभेश बने *सर्वज्ञ* सभी मन में हरषाये हैं।।
चतुर्दिग् छाया है आनन्द अरे आनन्द और आनन्द।
समाया सभी मनों में आज अनन्तानन्द अनन्तानन्द।।८ ।।

अयोध्या की सब गलियों में अरे जब फैले ये सन्देश।
हुआ जन-जन को अति आनन्द सभी जन पुलकित हुये विशेष।।
अरे उल्लास भरे अत्यन्त घरों से निकल पड़े सब लोग।
और आपस में करते बात अरे देखो अद्भुत संयोग।।९ ।।

अरे कुछ समझ नहीं आता करें क्या सोच रहे थे लोग।
अरे इक साथ तीन सौभाग्य फले यह कैसा योगायोग।।
इसी को कहते हैं सब लोग अरे यह महापुण्य का योग।
बहुत कम मिलते ऐसे योग विविधविध सोच रहे थे लोग।।१०।।

भरत ने दिया तभी आदेश चलो जिनवर के वंदन को।
बाद में देखेंगें क्या हुआ चलो पहले जिनदर्शन को।।
अरे जिनदर्शन की महिमा भरत के अन्तर में छाई।
यही कारण है कि यह बात अरे उनके मन में आई।।११।।

अरे रे पुत्ररत्न की बात अरे रे चक्ररत्न की बात।
नहीं आकर्षित कर पाई किन्तु जिनवर दर्शन की बात।।
प्रथमतः उनके मन आई और उनके चित को भायी।
यही है निर्मलता मन की जो उनके अन्तर में छाई।।१२।।

सुआ–सूतक में तो सब लोग नहीं जाते जिनमन्दिर में।
भरत को क्यों विकल्प आया अरे जिनवर के दर्शन का।।
अरे सामान्यजनों को ही सुआ–सूतक लगते जानो।
सुआ–सूतक लगते हैं नहीं बड़े लोगों को – यह मानो।।१३।।

जिनेन्द्र के दर्शन–पूजन किये विविध विध उत्सव किये अनेक।
लिया धर्मोपदेश का लाभ जगा अन्तर में भेद–विवेक।।
विविधविध अन्तर में उत्साह हृदय में उमड़ा भक्तिभाव।
और मनमोर नाचने लगा तथा वाणी में प्रगटे भाव।।१४।।

अरे वाणी में प्रगटे भाव और वाणी में फूटे बोल।
हृदय में उछले भाव अनन्त अरे भक्ती के भाव अमोल।।
अरे भक्ती के भाव अमोल उन्होंने भक्ती की भरपूर।
अरे आँखों में आया पूर देखने लायक मुख का नूर।।१५।।

अरे कर जोड़ खड़े थे भरत हृदय में उमड़े भाव अनन्त।
उन्हें लख ऐसा जग को लगा आ गया उनके भव का अन्त।।
आ गया उनके भव का अन्त उन्हें आया आनन्द अनन्त।
अनन्तानन्द अनन्तानन्द उन्हें आया आनन्द अनन्त।। १६।।

भरत को अपने मन ही मन हो रहा था अद्भुत आभास।
सहज उनके मुखमण्डल पर छा गया अन्तर का उल्लास।।
उल्लसित भक्ति से जब भरत स्वयं की शक्ती लगा अशेष।
ऋषभ के चरणों में हो विनत स्तुति करने लगे विशेष।।१७।।

अरे रे ॠषभ देव भगवान! आपने पाया केवलज्ञान।
किया चारित्रमोह का नाश अरे पाया आनन्द महान।।
आपके बीते रागरु द्वेष वीतरागी हो गये विशेष।
वीतरागी सर्वज्ञ जिनेश दिया जग को हितकर उपदेश।।१८।।

घातिया कर्म किये चकचूर अरे हो तुम देवों के देव।
अरे अरहन्त दशा को प्राप्त आप हो गये जिनेश्वर देव।।
आपकी सेवा में नित रहें उपस्थित अरे हजारों देव।
आपकी महिमा अपरम्पार स्वयं में लीन सदा स्वयमेव।।१९।।

अनन्ते गुण राजित जिनदेव विराजे समोशरण के बीच।
आपकी शोभा अपरम्पार विराजे शत इन्द्रों के बीच।।
प्रसारित दिव्यध्वनि हो रही हो रहा हितकारी उपदेश।
अरे रे कान लगाकर भव्य सुन रहे परमतत्त्व उपदेश।।२० ।।

आपने कहा – अनन्तानन्त गुणों का पिण्ड आतमाराम।
न इसकी आदि है न अन्त अनादिनन्त आतमाराम।।
शान्ति का सागर सुख का कन्द स्वयं में ही पूरण स्वाधीन।
स्वयं से बाहर निकले नहीं स्वयं में ही है अन्तर्लीन।।२१ ।।

स्वयं में अपनेपन के साथ यदि हो अपने में ही लीन।
और अपने में ही जम जाय सहज हो अपने में तल्लीन।।
सहज सुख–शान्ति प्राप्त हो सहज आत्मा अपने में लवलीन।
सहज हो आतम आतमराम मुक्ति पा हो पूरण स्वाधीन।।२२ ।।

आतमा के साधक सब जीव मुक्ति में जाना चाहें सभी।
जिनेश्वर देव आपके भक्त मुक्ति को पाना चाहें अभी।।
अरे मुक्ति में परमानन्द भोगते रहें अनन्ताकाल।
उन्हीं को कहते हैं सब सिद्ध उन्हीं को सदा नवावें भाल।।२३ ।।

अरे यह भरत आपका भगत आपके चरणों में रख शीश।
नमन करता है बारम्बार प्राप्त करना चाहे आशीष।।
आतमा में ही मेरा चित्त निरन्तर रमा रहे जिनदेव।
और कुछ नहीं चाहिये मुझे आप से हे देवों के देव!।।२४ ।।

आपने बतलाया जिनदेव अरे जो जैनधर्म का मर्म।
अरे सौ–सौ इन्द्रों के बीच कहा है अयाचीक[१] जिनधर्म।।
अरे जो होते ज्ञानी जीव जानते हैं वे वस्तुस्वरूप।
नहीं होती भोगों की चाह जानते हैं वे अपना रूप।। २५ ।।

सभी का अपने में अपनत्व सभी का अपने में स्वामित्व।
सभी अपने–अपने कर्त्ता और सब अपने ही भोक्ता।।
किसी का कोई कुछ ना करे सभी हैं अपने में स्वाधीन।
किसी से लेना–देना नहीं सभी हैं अपने में लवलीन।। २६ ।।

अरे अपनापन अर ममता और कर्त्ता–भोक्तापन सभी।
सभी कुछ अपने में ही रहें सभी कुछ भिन्न–भिन्न हैं अभी।।
अरे रे एक क्षेत्र में रहें मिलें न कोइ किसी से कभी।
अरे रे यहाँ वहाँ ना कहीं रहें बस अपने में ही सभी।।२७ ।।

१. नहीं माँगने रूप

जिनेश्वर देव आप भी कभी किसी का कुछ भी करते नहीं।
सभी गुण-पर्यायों के साथ सभी द्रव्यों को जानें सही।।
आज तक हुआ उसे जानें और होगा उसको जानें।
सभी की रग-रग पहिचानें और अपने को भी जानें।। २८।।

स्वयं को तन्मय हो जानें और पर को केवल जानें।
स्वयं में अपनापन भी रहे किन्तु पर को बस पर जानें।।
अरे रे अपनेपन[1] के साथ जानने को कहते परमार्थ।
और रे अपनेपन के बिना जानने को कहते व्यवहार।। २९।।

जानते हो तुम लोकालोक किन्तु पर में कुछ भी ना करें।
जानने में तो बाधा नहीं किन्तु करने में हस्तक्षेप।।
अरे करने में हस्तक्षेप आप भी कभी नहीं करते।
और ना कर सकते जिनराज! आप ऐसा ही हैं कहते।। ३०।।

अरे रे कोइ किसी का करे किसी में ऐसी शक्ती नहीं।
ज्ञान के ज्ञेय बनें सब द्रव्य सभी में ऐसी शक्ती कही।।
अरे सामान्य गुणों में एक अनोखा ऐसा गुण[2] भी अहा।
कि जिसके कारण ही सब द्रव्य ज्ञेय बनते ही हैं - यह कहा।।३१।।

आपने बतलाया जिनदेव! कहाँ कब क्या कैसा होगा।
जानते हैं सब ही सर्वज्ञ न उसमें फेरफार होगा।।
और सब निश्चित है हे नाथ! आप यह भी बतलाते हैं।
अतः हम सभी सहज ही रहें - आप ऐसा समझाते हैं।। ३२।।

---

१. यही मैं हूँ - ऐसी मान्यतापूर्वक २. प्रमेयत्व गुण

अरे कुछ भी करने का भार किसी के माथे पर है नहीं।
जिसे जाना है भव से पार सहज ही जावेगा वह सही।।
निगोद से निकला है जिसतरह उसी विध होगा भव से पार।
जगत में अरे सभी कुछ सहज, बात यह सहज करो स्वीकार।। ३३।।

जगत के भी हैं जितने काज सहज ही होते हैं जिनराज।
किसी का उसमें कुछ ना चले विकल्पों से ना हो कुछ काज।।
अरे होना तो है बस वही आपने जो जाना जिनराज।
नहीं होना है उसमें फेर आपने जो देखा जिनराज।। ३४।।

विकल्पों से तो रे कुछ भी, काम में होना–जाना नहीं।
किन्तु कर्मों का बन्धन तुझे नियम से होगा – समझो सही।।
बहुत ही घाटे का व्यापार अरे समझो मेरे भाई।
अधिक क्या कहें जिनेश्वरदेव नहीं उलझो इसमें भाई।। ३५।।

निगोद से अबतक सबकुछ सहज, सातवें गुण से मुक्तितलक।
सहज सब कुछ होता आया सभी को स्वीकृत है अबतलक।।
बीच का थोड़ा सा यह काल अरे इसमें भी हो सब सहज।
यही है परम सत्य सत्पन्थ करो इसको भी स्वीकृत सहज।। ३६।।

अभी तक था पूरा बेहोश और अब आगे पूरा होश।
अरे ना बेहोशी में किया और जब होगा पूरा होश।।
अरे तब भी करना है नहीं और अब आया है कुछ होश।
अरे ऐसी हालत में प्रभो! अरे करने का आया जोश।। ३७।।

जोश में भाई खो मत होश और करने का कुछ मत सोच।
सभी कुछ निश्चित है हे भव्य! अरे इसके बारे में सोच।।
यही है परम सत्य भूतार्थ करे मत तू कोई संकोच।
अधिक क्या कहें जिनेश्वरदेव अरे तू सोच सोच तू सोच।। ३८।।

आज के निर्णय पर है टिका अरे तेरा भावी इतिहास।
अरे तू हो थोड़ा गम्भीर धर्म में ठीक नहीं उपहास।।
अरे तू एक बार स्वीकार हृदय की गहराई में पेठ।
अरे अन्तर में गोता लगा छोड़ दे अरे व्यर्थ की ऐंठ।।३९।।

अरे समझाते हैं जिनदेव सावधानी से सुनते सभी।
किन्तु जिसके पाँचों समवाय मुक्ति में जाने के हों अभी।।
समझ में आता है सर्वांग अकेले उसको हे जिनदेव!।
शेष यों ही आते-जाते और सुनते रहते उपदेश।। ४०।।

जगत की बगिया सम्भली रहे अतःकुछ तो करना होगा।
उपेक्षा से तो पूरा बाग अरे बिखरा-बिखरा होगा।।
जगतजन कहें - नहीं तो अरे बिखर जावेगा पूरा बाग।
बाग न बिखरे इसके लिये बनाना होगा एक विभाग।। ४१।।

वनों को कौन व्यवस्थित करे और दे कौन खाद-पानी।
वे स्वयं फलें-फूलें सहज ही बिना खाद-पानी।।
हजारों पक्षी कलरव करें और चौपाये पशु विचरें।
सभी वन हरे-भरे नित रहें मिले न उन्हें खाद-पानी।। ४२।।

अरे हैं बागों से वन अधिक पालतू पशुओं से पशु अधिक।
सहज ही सब रहते सानन्द फूलते–फलते हैं सब सहज।।
सहज ही सारा जग चलता नहीं कोई कुछ करता है।
नहीं करने–धरने का काम सहज ही सहज सहजता है।। ४३।।

सहज सारी दुनियाँ चलती सहज चलता है सब संसार।
अरे तुम रहो निराकुल शान्त नहीं है भव सागर का पार।।
अरे तुम कुछ विकल्प मत करो और हो जावो भव से पार।
सहजता को स्वीकारो बन्धु सहजता जीवन का आधार।। ४४।।

अरे तुम हो जावो निश्चिन्त और तुम अपने में जाओ।
स्वयं को जानो पहिचानो स्वयं में स्वयं समा जाओ।।
काय चेष्टा कुछ भी मत करो और कुछ भी मत बोलो बोल।
और कुछ भी न सोचो भाइ एक आतम में रमो अमोल।। ४५।।

अरे है यही धर्म का मर्म प्रभु की दिव्यध्वनि का सार।
अरे भरपूर किया रसपान भरत ने प्रमुदित हुये अपार।।
हुये वे स्वयं स्वयं में लीन और सबकुछ भूले भरतेश।
देव के चरणों में झुक गये स्वयं को भूल गये अवधेश।। ४६।।

स्वयं को भूल गये अवधेश जिनेश्वर की भक्ति में लीन।
जिनेश्वर की भक्ति में लीन स्वयं में स्वयं हुये तल्लीन।।
और सब भूल गये थे भरत एक आतम में ही थे लीन।
ऋषभ के चरणों में झुक गये पूर्णतः भक्ति में तल्लीन।। ४७।।

झुके ही रहे झुके ही रहे न जाने कबतक भरत नरेश।
और जब उठे, उठे ही रहे शान्ति के सागर भरत नरेश।।
शान्ति के सागर भरत नरेश क्रान्ति के वाहक भरत नरेश।
एकदम अद्भुत ही लग रहे अरे मुख मण्डल के परदेश।। ४८।।

अरे रे जिनदर्शन के साथ भरत ने निजदर्शन भी किये।
भरत ने निजदर्शन भी किये और अपने में ही रम गये।।
अरे अपने में ही रम गये और अपने में ही जम गये।
जमे सो जमे, जमे ही रहे अरे वे ऐसे ही रह गये।।४९।।

और चातक दृष्टि से सभी भरत की ओर देखने लगे।
भरत दीक्षा न ले लें अभी सभी मन्त्रीगण चिन्तित हुये।।
अरे आँखों-आँखों में सभी मनहु[1] उनसे कुछ कहने लगे।
यद्यपि बोले कुछ भी नहीं किन्तु वे मन को पढ़ने लगे।।५०।।

भरत के मन को पढ़ने लगे और थिर तन को लखने लगे।
अरे वे क्या-क्या कर सकते सभी जन यही परखने लगे।।
श्री श्रीवृषभसेन लघुभ्राता दीक्षा ले गणधर बन गये।
भरत भी ऐसा कुछ न करें सभी जन यही सोचने लगे।।५१।।

देखकर उन्हें जगत के जीव चकित हो ऐसे ही रह गये।
देखते रहे देखते रहे और सब उन्हें देखते रहे।।
हो गये अरे एकदम मुग्ध न जाने कैसा जादू हुआ।
सभी को ऐसी शंका हुई भरत दीक्षा न ले लें अभी।।५२।।

१. मानो

किन्तु वे मन को पढ़ने लगे धैर्य भी उनका जाने लगा।
और वे होने लगे अधीर करें क्या? समझ नहीं आता।।
भरत ने दिया तभी आदेश चलो अब राजमहल की ओर।
पुत्र का जन्म हुआ है वहाँ, सभी उनके मुख से सुनते।।५३।।

सभी की आकुलता कम हुई सभी की चिन्ता भी कम हुई।
भरत हैं अभी एकदम सहज, सहज जनता भी होने लगी।।
और सब लगे लौटने सहज हृदय में प्रभु की भक्ति लिये।
भरत भी चले महल की ओर प्रभु का चिन्तन करते हुये।।५४।।

प्रभु का चिन्तन करते हुये, प्रभु ने जो-जो बातें कहीं।
उन्हीं का घोलन करते हुये उन्हीं का मंथन करते हुये।।
उन्हीं को धारण करते हुये और अवधारण करते हुये।
उन्हीं का मनन और स्मरण विविध विध चिन्तन करते हुये।। ५५।।

महल की ओर चले भरतेश और जनता भी चलने लगी।
सभी को अपने-अपने काम याद आने लगते हैं अभी।।
भरत को भी आई अब सुनो जगतजन! पुत्र जन्म की याद।
सोचने लगे भरत सम्राट अरे उसके उत्सव की बात।। ५६।।

(दोहा)

इसप्रकार भरतेश ने, जिनवर दर्शन आज।
पूरण भक्तिभाव से, की पूजन जिनराज।।५७।।

दिव्यध्वनि के श्रवण का, लाभ लिया भरपूर।
सबको ही आया प्रभो! अति आनन्द अपूर्व।। ५८।।

-●-

भरत का अन्तर्द्वन्द्व
दूसरा अध्याय

(दोहा)

प्रातः उठते भरत ने, अन्तर्मुख हो आप।
सबसे पहले ही किया, णमोकार का जाप।।१।।

अन्तर्मुख हो किया फिर, निज आतम का ध्यान।
और चिन्तवन तत्त्व का, करने लगे महान।।२।।

(वीर)

जिनदर्शन जिनपूजन कर श्री जिनवर की स्तुति महान।
वन्दन अभिनन्दन करके श्री ऋषभदेव का कर गुणगान।।
परीजनों के साथ भरत ने किया मधुरतम स्वल्पाहार।
और पूर्ण सज्जित होकर फिर पहुँचे भरत राजदरबार।।३ ।।

पहले से ही भरा हुआ सारा दरबार उपस्थित था।
भरतराज ने पुत्र जन्म के उत्सव का आदेश दिया।।
सभी जनों का मन मानो तैयार तो पहले से ही था।
सबकी तैयारी पूरी थी केवल आदेश प्रतीक्षित था।।४ ।।

आदेश मिला तो सभी लोग पूरे मन से सन्नद्ध हुये।
जुट गये सभी तन से मन से अर सभी उल्लसित जीवन से।।
करी सजावट जन–जन ने अपने–अपने घर आँगन की।
झिलमिल–झिलमिल हो उठा नगर शोभा थी अद्भुत प्राङ्गण की।।५।।

मधुर गीत–संगीत नृत्य सब घर–घर में आरम्भ हुये।
अरे नगर के जन–जन के थे मन अति ही उत्साह भरे।।
राजमहल की दिव्य सजावट अरे देखने लायक थी।
और सभी की भावभंगिमा अति उत्साह विधायक थी।।६ ।।

गली–गली में नर–किन्नर सब मधुर गीत–संगीत भरे।
एक–दूसरे को बधाइयाँ दे देकर उल्लसित हुये।।
उत्साहित होकर चलते सब मानो उनके मन नाच रहे।
रे मन्त्र मुग्ध से थे वे सब वे थे अति ही उल्लास भरे।। ७।।

भरतराज की भावभंगिमा अरे देखने लायक थी।
मन्द–मन्द मुस्कान भरत की अति आनन्दप्रदायक थी।।
सहजभाव से सभी जनों से मिलना–जुलना अनुपम था।
भेदभाव के बिना सभी को गले लगाना अद्भुत था।।८।।

निश्चयप्रेमी भरतराज का सद्व्यवहार अलौकिक था।
ज्ञायक के ज्ञाता–दृष्टा का सभ्याचरण अलौकिक था।।
अपने में रमने वाले के लौकिक सम्बन्ध अलौकिक थे।
अपने में जमने वाले के सारे व्यवहार अलौकिक थे।।९।।

अपने में हैं या जन–जन में जन–जन कुछ जान नहीं पाता।
उनकी इस अद्भुत लीला को कोई पहिचान नहीं पाता।।
अरे आतमा के प्रेमी निज आतम में ही मगन रहें।
साधर्मी भाई–बहिनों से वे प्रेमभाव से मिलें–जुलें।।१०।।

अरे सभी सामान्यजनों को जो चाहा वह दान दिया।
आत्माराधक गुणीजनों का यथायोग्य सन्मान किया।।
संयमधारी गुरुवर्यों को अनुद्दिष्ट आहार दिया।
ज्ञानपिपासु मुमुक्षुओं को उनने आतम ज्ञान दिया।।११।।

अरे सभी को याद किया जन्मोत्सव में भरतेश्वर ने।
सभी बन्धुओं को सादर आमंत्रण भेजे थे उनने।।
सब आये सबनेमिलजुलकर उत्सव का आनन्द लिया।
और सभी नेमिलजुलकर रे एक साथ जलपान किया ।।१२।।

भरतराज राजेश्वर थे युवराज श्री बाहूबलि थे।
अतः बगल में बैठाया बाहूबलि को भरतेश्वर ने।।
और सभी को यथायोग्य सिंहासन पर बैठाया था।
सभी प्रतिष्ठित लोगों को उच्चासन पर बैठाया था।।१३।।

अरे आज के उत्सव में जो–जो आये थे उन सबका।
भरतेश्वर ने यथायोग्य सत्कार और सन्मान किया।।
और कहा कल चक्ररत्न के स्वागत का उत्सव होगा।
उसमें भी शामिल होकर उसको शोभित करना होगा।।१४।।

सबसे पहले भरतराज ने आदीश्वर को याद किया।
छोटे भाई वृषभसेन को फिर आदर से नमन किया।।
ऋषभदेव से दीक्षा ले वे पहले गणधरदेव बने।
शत-शत वन्दन महाभाग्यशाली मुनिवर के चरणों में।।१५।।

और अनेकों भाई जो-जो दीक्षित हो मुनिराज बने।
आत्मसाधना में तत्पर होकर जो गणधरदेव बने।।
उन सबको वन्दन करके अभिनन्दन करते हैं हम सब।
उनके अनुपम इस कारज को सबका सौभाग्य समझते हम।।१६।।

जिन्हें अंक[1] में लेकर जिन[2] ने अंक और अक्षर विद्या।
सिखलाई हों उनकी महिमा अरे कहाँ तक गायें हम।।
उन्हीं ब्राह्मी-सुन्दरि ने आर्या की दीक्षा को लेकर।
सौभाग्य बढ़ाया हम सबका हो महामान्य गणनी बनकर।।१७।।

नाभिराय के कुल को ही रे एक और सौभाग्य मिला।
चक्ररत्न ने आकर अपनी सेवाओं का दान दिया।।
छह खण्डों में बँटे भरत[3] को वह ही अखण्ड रूप देगा।
हम सब भी होंगे अखण्ड हम सबका एक देश होगा।।१८।।

अरे करेंगे हम सब मिल इस चक्ररत्न का स्वागत कल।
सभी सम्भालेंगे मिलकर आई जिम्मेदारी हम पर।।
भरतराज के नम्र निवेदन को सुन सब सन्तुष्ट हुये।
और विविधविध चर्चाओं में सभी लोग संलग्न हुये।।१९।।

---

१. गोद २. आदिनाथ ३. भरतक्षेत्र

कोई कहने लगा भरत कितने विनम्र मृदुभाषी हैं।
पुण्योदय से प्राप्त चक्र को वे सबका बतलाते हैं।।
'बना रहे वात्सल्य भाव' – ऐसा व्यवहार निभाते हैं।
'सब रहें साथ में' – वे निशदिन बस यही भावना भाते हैं।।२०।।

हम ऋषभदेव की संतानें सब एक, एक से ही तो हैं।
उनकी जो गौरव गाथा है, हम सबकी है, हम सबकी है।
जो–जो सत्कार्य हुये हमसे सब उनके हैं सब उनके हैं।
यद्यपि हम सब हैं पृथक्–पृथक्, पर उनके हैं पर उनके हैं।।२१।।

हम सबका है सो उनका है अर उनका है हम सबका है।
जो उनके साथ गये भाई वे सब इस कुल के दीपक हैं।।
जो रहे शेष घर में भाई वे सब इकदम इस घर के हैं।
हम सब में एका रहे सदा क्योंकि हम सब इक घर के हैं।।२२।।

जबतक हम सब इस घर में हैं तबतक इस घर के हैं भाई।
जिनने घर छोड़ा वे सब तो श्री जिनवर पथ के हैं राही।।
जो शेष रहे सब बंधे रहें यह तो सौभाग्य हमारा है।
हम एक, एक ही रहें सदा सारा परिवार हमारा है।।२३।।

यह जग का सर्वश्रेष्ठ कुल है यह नाभिराय कुलकर का है।
हम सभी एक श्रेणी के हैं हम सब ही इसकी शोभा हैं।।
इस कुल के गौरव को भी तो हम सभी बढ़ाने वाले हैं।
आगे–पीछे हम सब भी तो मुक्ति में जाने वाले हैं।।२४।।

हम सब मिलकर आदीश्वर के गौरव से गुंजित इस कुल को।
खण्डित ना होने देंगे हम मण्डित रक्खेंगे इस कुल को।।
यह तीर्थंकर के गौरव से अर चक्रवर्ती के वैभव से।
अर कामदेव की सुन्दरता से मण्डित अन्तर्वैभव से ।।२५।।

इस गौरव को इस गरिमा को हमको सम्भालकर रखना है।
जबतक हम घर में रहें अरे गरिमा को कायम रखना है।।
पूज्य पिताश्री ऋषभदेव ने मुझे बनाया था राजा।
कामदेव बाहूबलि को उनने युवराज बनाया था ।।२६।।

और भाइयों को भी उनने यथायोग्य पद बाँटे थे।
और सभी को प्रेमभाव से रहने की शिक्षा दी थी।।
अब उनकी आज्ञा धारण कर हम प्रेमभाव से रहें सभी।
आपस में सब सुलझा लेवें मतभेद होय जब कभी-कभी।। २७।।

प्रेमभाव वात्सल्यभाव से रहें निरन्तर जीवनभर।
एक-दूसरे का आदर सन्मान करें हम जीवनभर।।
अरे एकता में अद्भुत शक्ति होती है इस जग में।
और सभी आजादी से रह सकते हैं सब हिल-मिलके ।।२८।।

नहीं किसी पर किसी तरह का बन्धन, पूरी आजादी।
और सभी जन रहते हैं जीवनभर सुख-दुख के साथी।।
अगर बाँटते ऋषभदेव तो सौ खण्डों में बँट जाता।
श्री ऋषभदेव के भारत के फिर सौ-सौ टुकड़े हो जाते।।२९।।

कोई राजा स्वयं राज्य के टुकड़े कैसे कर सकता?।
इसीलिये तो बड़े भाई को राजतिलक होता आया।।
और सभी उसके सहयोगी रहते आये हैं अबतक।
परम्परा तो इसीतरह की रहती आई है अबतक।। ३०।।

बस यही किया ऋषभेश्वर ने जो अबतक होता आया है।
मिलजुलकर एक साथ रहकर हम सबने उसे चलाया है।।
पृथ्वी बँटती है नहीं कभी अर काम-धाम का बँटवारा।
होता आया है अभी तलक यह काम व्यवस्था का सारा।।३१।।

जैसे माँ-बाप नहीं बँटते वैसे ही राज्य नहीं बँटता।
संगठन नहीं विघटन होता यदी राज्य बाँटा जाता।।
हम सभी संगठित रहकर ही आगे-आगे बढ़ सकते हैं।
विघटित होकर तो एक कदम भी आगे ना बढ़ सकते हैं।।३२।।

है आज हमारा भाग जगा हम चक्रवर्ति होने वाले।
अर पुण्योदय से अरे हमारे महाभाग जगने वाले।।
हम सब ही हैं अति ही प्रसन्नौरव गरिमा से मण्डित हैं।
आनन्द मगन ही हैं हम सब हम जिनशासन के पण्डित हैं।। ३३।।

आज वृषभ का भारत यह जो भरतक्षेत्र कहलाता है।
यह है अखण्ड परचण्ड चण्ड सारे जग का उजियारा है।।
यह नहीं बँटेगा खण्डों में यह तो सौभाग्य हमारा है।
यह भारत तो हम सबका है यह भारत हमको प्यारा है।।३४।।

हम सभी एक हैं एक रहें यह भरतभूमि हम सबकी है।
हम सब ही इसके पालक हैं यह भूमि अरे हम सबकी है।।
यह चक्ररत्न हम सबका है और सभी हम इसके हैं।
बँटवारे की मत बात करो सब एक एक बस एक ही हैं।।३५।।

हम सभी ऋषभ के पुत्र और वे जनक अरे हम सबके हैं।
हम उनके हैं हम उनके हैं वे ही सर्वस्व हमारे हैं।।
वे परम पूज्य हैं जनक और हम उनके राज दुलारे हैं।
हम उनके हैं हम उनके हैं ऋषभेश्वर जनक हमारे हैं।। ३६।।

रे ऋषभ हमारे पिता और हम सब सन्तानें हैं उनकी।
उनकी जो गौरव गरिमा है वह ही है मानों हम सबकी।।
मेरे भाई सब मेरे हैं सब मेरे लिये महत्तम हैं।
सम्पन्न विविध विद्याओं से सचमुच वे सब सर्वोत्तम हैं।। ३७।।

अत्यन्त उल्लसित भावों से अपने अन्तर को प्रगट किया।
इसतरह सभी से नेह जताकर यथायोग्य सन्मान दिया।।
सब परिजन को सबपुरजन को अत्यन्त नेह से विदा किया।
'चक्ररत्न के स्वागत में सब आवें' – यह अनुरोध किया।। ३८।।

(दोहा)

इसप्रकार पूरण हुआ, पुत्र जन्म का पर्व।
अब कल होगा जान लो, चक्ररत्न का पर्व।।३९।।

विजय यात्रा भरत की, अब होगी आरम्भ।
मंगलमय मंगल रहे, उनका विजयारम्भ।। ४०।।

–●–

भरत का अन्तर्द्वन्द्व

तीसरा अध्याय

(दोहा)

किया भरत ने प्रथम ही, णमोकार का जाप।
फिर निज आतमध्यान धर, मेटे सब सन्ताप।।१।।

ऋषभदेव जिनराज को, वन्दन बारम्बार।
फिर सब अपने काम में, लगा सभी दरबार।।२।।

(वीर)

सारा दरबार उपस्थित है सब अपने-अपने आसन पर।
और सभी के मध्य विराजे भरतराज सिंहासन पर।।
मंगलाचरण का पाठ सभी जन सबसे पहले करते हैं।
श्री ऋषभदेव के चरणों में वन्दन अभिनन्दन करते हैं।।३ ।।

अन्दर से इकदम शान्त भरत सबको समझाने लगते हैं।
श्री ऋषभदेव के नन्त गुणों के गाने गाने लगते हैं।।
श्री ऋषभदेव के दिव्यज्ञान की गौरवगाथा गाते हैं।
वृषभेश्वर की वीतरागता का स्वरूप समझाते हैं।।४ ।।

'ऐसा ना हो, अर ऐसा हो' – ऐसा कुछ भाव न उनको है।
जो कुछ जैसा हो रहा जहाँ वे सहज जानते रहते हैं।।
जिसको जैसा है भाव सहज वे उसे जानते हैं पूरण।
उसकी रग-रग को पहिचानें गहराई जानें संपूरण।।५ ।।

सबके सभी परिणमन उनके सहज ज्ञान में हैं आते।
पर उनके दिव्यज्ञान को वे सब नहीं तरंगित कर पाते।।
कोई भी घटना दुर्घटना ना उनको आकुल करती है।
रे उनका ज्ञान जलोदधि तो नित शान्त निराकुल रहता है।।६।।

घटना-दुर्घटना सब जानें पर शान्ति न खण्डित होती है।
यह वीतरागता की महिमा जो उनको मण्डित रखती है।।
सर्वज्ञ वीतरागी जिनवर वे नहीं किसी से जुड़ते हैं।
बस अपने में ही रहते हैं बस अपने में ही रहते हैं।।७।।

वे भरतराज कुछ देर शान्त ऐसे ही कहते रहते हैं।
कुछ देर शान्त बैठे रहते फिर इकदम कहने लगते हैं।।
अब चलो सभी हम मिलजुलकर आयुधशाला में चलते हैं।
अर चक्ररत्न का यथायोग्य विधिपूर्वक स्वागत करते हैं।।८ ।।

फिर भरतक्षेत्र के छह खण्डों के नृपगण को अपनाने की।
तैयारी करते हैं मिलकर दिग्विजय यात्रा करने की।।
मन्त्रीगण अर सेनापति मिल सब तैयारी में जुट जावें।
और बनावें कार्यक्रम फिर हमें सभी कुछ बतलावें।।९ ।।

शुभ मुहूर्त्त में निकलें हम दिग्विजय यात्रा करने को।
सबसे पहले पूर्व दिशा की ओर हमें जाना होगा।।
श्री गंगातट पर बसे हुये राजाओं से मिलना होगा।
विजय यात्रा का मकसद उन सबको समझाना होगा ।। १०।।

यह भरतक्षेत्र प्राकृतिकरूप से छह खण्डों में बँटा हुआ।
फिर खण्डों के भी खण्ड-खण्ड कर दिये अनेकों नृपगण ने।।
सबको अखण्ड करना होगा इस भरतक्षेत्र की गरिमा को।
इस भरतक्षेत्र के गौरव को इस भरतक्षेत्र की महिमा को।। ११।।

खण्ड-खण्ड में बँटे हुये ये सब छोटे-छोटे नृपगण।
आपस में लड़ते रहते हैं बिन कारण ये छोटे नृपगण।।
इन झगड़ों से मतभेदों से खण्डित होता है यह भारत।
हो गये यदी हम सब अखण्ड तो मण्डित होगा यह भारत।। १२।।

अर विकास के काम नहीं हो पाते हैं इन खण्डों में।
गंगा जैसी बड़ी नदी बँट जाती कई भूखण्डों में।।
उसका बँटवारा करने को सब राज्य झगड़ते रहते हैं।
इन नदियों पर फिर बड़े-बड़े रे बाँध नहीं बन सकते हैं।। १३।।

इन बाँधों के बिना सिंचाई कैसे होगी खेतों की।
अरे सिंचाई बिना जुताई कैसे होगी खेतों की।।
फिर अनाज का उत्पादन भी कैसे होगा खेतों में।
फिर विकास के काम भला कैसे हो पावें भारत में।। १४।।

सभी तरह की सुख–सुविधायें तभी मिलेंगी जन–जन को।
जब भरत क्षेत्र विकसित होगा तब शान्ति मिलेगी जन–जन को।
यह भारत जब होगा अखण्ड तब ही इसका विकास होगा।
विकसित होने पर जन–जन को रे इसका लाभ प्राप्त होगा।।१५।।

चक्ररत्न की उपलब्धि ने हमें जगाया है मानों।
यह काम हमें ही करना है यह हमें जताया है मानों।।
यदि नहीं करेंगे हम तो फिर यह कौन करेगा बतलाओ।
रे हाथ हिलाकर बुला रहा आओ आओ आओ आओ।। १६।।

कर्मभूमि विकसित करने की जिम्मेदारी हम सबकी।
क्योंकि विकास की सभी प्रक्रिया कुलकर करते आये हैं।।
नाभिराय कुलकर ने अबतक अरे बहुत कुछ काम किया।
ऋषभदेव ने उसे बढ़ाया बाकी करना है हमको।। १७।।

टुकड़ों–टुकड़ों में बँटी भूमि को हमें एक करना होगा।
भरतक्षेत्र के खण्डों को रे हमें एक करना होगा।।
फिर अखण्ड यह भरतभूमि पूरी विकसित करनी होगी।
खेतों अर खलिहानों को भी हरा–भरा करना होगा।। १८।।

पूरव–पश्चिम उत्तर–दक्षिण सब जगह लोग आवें–जावें।
इसलिये जुटानी होंगी सब आने–जाने की सुविधायें।।
मार्गों का निर्माण कराना होगा सारे भारत में।
रे विकास के कार्य कराने होंगे सारे भारत में।। १९।।

दिग्विजय यात्रा नहीं भरत की इच्छा पूरी करने की।
रे चक्रवर्ती बन जायें भरत यह नहीं बात बस इतनी ही।।
कर्मभूमि का हो विकास अर भरतभूमि भी विकसित हो।
सबको विकास की राह मिले आराम प्राप्त जन-जन को हो।। २०।।

सारे जन अपने जीवन को विकसित करने की राह चुनें।
अपने पथ का निर्माण करें अपने विकास का काम करें।।
सबको सुविधायें मिलें सभी सब अपने मन का काम चुनें।
सबको पूरी आजादी हो जो चाहें वे बस वही बनें।। २१।।

भरत बनें सम्राट बात बस इतनी नहीं समझना तुम।
भरतक्षेत्र के सभी नागरिक सब सुविधायें प्राप्त करें।।
बस यही चाहता हूँ मैं तो ना कोई सुविधाहीन रहे।
रोटी कपड़ा अर मकान की नहीं किसी को कमी रहे।। २२।।

है नहीं भावना मेरी यह सब दुनियाँ मेरे वश में हो।
मैं तो बस यही चाहता हूँ यह सारा जग स्वाधीन रहे।।
सब मिलकर सम्पूर्ण क्षेत्र को विकसित कर सम्पन्न बनें।
रे विकास के कामों में सारे जन भागीदार बनें।। २३।।

इस यात्रा में सहयोग करें, सहयोग करें समझाने में।
इस भरतक्षेत्र को एक अखण्डित करने और कराने में।।
जब हम सब होंगे एक हमारा भरतक्षेत्र विकसित होगा।
हम सब होंगे सम्पन्न हमारा मन भी आनन्दित होगा।। २४।।

हम यही चाहते हैं कि आप प्रस्ताव हमारा स्वीकारें।
अर विकास के कामों में भी हाथ बँटाना स्वीकारें।।
अरे आज के ही समान सब राज्य व्यवस्था आप करें।।
बनें हमारे सहयोगी सब, सब कामों में साथ रहें।। २५।।

यों पूर्व दिशा के सभी नरेशों के दिल मीठे बोलों से।
जीता भरतेश्वर ने सबको मीठे–मीठे सम्बोधन से।।
सबने उनका आतिथ्य किया अर लाद दिया है हारों से।
अर अपनी बहिन–बेटियाँ दी सन्मान किया उपहारों से ।। २६।।

इसतरह भरत ने राजाओं को अपनेपन से मोड़ लिया।
सम्बन्ध बनाकर प्रेमभाव से नजदीकी से जोड़ लिया।।
सबको अपना पक्का साथी अर हित का चिन्तक बना लिया।
लड़कर मिल सकता नहीं कभी अपनाकर वह सब प्राप्त किया।। २७।।

अपनापन सच्चा मारग है अपनापन जीवन का साथी।
मानो तेरा स्वागत करने आया है ऐरावत हाथी।।
आया है ऐरावत हाथी तेरा जागा सौभाग्य अरे।
अपना ले इसको जीवन में तो ही तेरा सौभाग्य जगे।। २८।।

यदि अपनापन अपने में हो तो सम्यग्दर्शन होता है।
यदि अपने को अपना जानें तो सम्यग्ज्ञान महकता है।।
जब अपने में ही रम जावें जम जावें केवल अपने में।
यह ही है भाई आत्मध्यान इसको ही चारित कहते हैं।। २९।।

यह सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित प्रगटे इस मानव जीवन में।
तो देर नहीं है फिर भाई भव से मुक्ति के मिलने में।।
अपनापन मुक्तिमारग है अपने में अपनापन ही तो।
मुक्ति है मुक्तिमारग है यह सब अनन्त सुखमय ही है।। ३०।।

दिग्विजय यात्रा नहीं अरे यह तो एकत्व हमारा है।
अरे संगठित करने का मंगल अभियान हमारा है।।
रे रहे अखण्डित भरतक्षेत्र यह एक हमारा नारा है।
रे अखण्ड भारत ही तो बस हमको सबसे प्यारा है।। ३१।।

अरे चक्रवर्तित्व हमारा ध्येय नहीं उद्देश्य नहीं।
बस हो अखण्ड यह भरतक्षेत्र है एकमात्र उद्देश्य यही।।
अरे हमारे साथ सभी आवें बस यही चाहते हम।
हम एक रहें हम एक रहें बस एक मात्र यह चाहें हम।।३२।।

इसी तरह दक्षिण-पश्चिम के राजाओं को याद किया।
अरे अखण्डित होने का उन सबको भी सन्देश दिया।।
उनको सब बातें समझाईं सन्देश दिया नजदीकी का।
वात्सल्य भाव से प्रेरित कर सन्देश दिया अपनेपन का।। ३३।।

उन सबसे जुड़ने की अपील अत्यन्त सरल परिणामों से।
सभी तरह आश्वस्त किया सन्मान किया सद्भावों से।।
उन सबको बात समझ आई उत्साहित होकर सब आये।
जुड़ना सबने स्वीकार किया सब अपनेपन से ही आये।। ३४।।

सबने उनका आतिथ्य किया अर लाद दिया है हारों से।
अर अपनी बहिन–बेटियाँ दी सन्मान किया उपहारों से।।
भरतराज ने उन सबको वात्सल्यभाव से अपनाया।
आतिथ्य सभी का स्वीकारा और गले से लगा लिया।। ३५।।

अरे एकता से विकास की सीमाओं को समझाकर।
अर अखण्डता की असीम शक्ति की महिमा बतलाकर।।
सबके मन को उल्लसित किया प्रियवचनों से सन्तुष्ट किया।
सबके मन को मन से जीता सबके मन को सन्तुष्ट किया।। ३६।।

तीन खण्ड में विद्यमान सब मुकुटबद्ध सोलह हजार।
राजाओं के दिल को जीता वात्सल्यभाव से समझाकर।।
प्रेमभाव से अपनाकर सबको ही अपना बना लिया।
अर एक बूँद भी खून बहाये बिना सभी को जीत लिया।। ३७।।

(दोहा)

हुई अहिंसा की विजय, सबके मन उल्लास।
मनरंजन के लिये सब, करें हास–परिहास।। ३८।।

तीन खण्ड तो इसतरह, जीते भरत नरेश।
अर्द्धविजय पूरी हुई, हुआ नहीं संक्लेश।। ३९।।

ऋषभदेव भगवान के, दर्शन के शुभभाव।
मन में जागे भरत के, थुति करने के भाव।।४०।।

–●–

भरत का अन्तर्द्वन्द्व
चौथा अध्याय

(दोहा)

शेष विजय यात्रा करें, उसके पहले दिव्य।
जिनवर के दर्शन करें, यही भावना भव्य।।१।।

मध्यरात्रि में ही गये, दर्शन को भरतेश।
भक्ति करने का अरे, था उल्लास विशेष।।२।।

(वीर)

एक दिवस भरतेश्वर को ऋषभेश्वर के आराधन के।
शुभ भाव हुये तो मध्यरात्रि में दर्शन करने जा पहुँचे।।
अन्तर में अति आनन्द हुआ वे दर्शन कर कृतकृत्य हुये।
रे हुये प्रफुल्लित अन्तर में स्तुति करने के भाव हुये।। ३ ।।

वृषभेश आपकी दिव्यध्वनि सन्ताप मिटाने वाली है।
भव-भोगों में उलझे मन की उलझन सुलझाने वाली है।।
भवज्वाला में जलते जन को ठण्डक पहुँचाने वाली है।
भव-भव में भटके प्राणी को भवपार लगाने वाली है।।४।।

वे जन हैं महाभाग्यशाली जो प्रतिदिन सुनने आते हैं।
वे जन तो महा अभागे हैं जो प्रतिदिन ना सुन पाते हैं।।
मैं उन्हीं अभागों में से हूँ जिनको मिलता है लाभ नहीं।
मैं प्रतिदिन आऊँ हे भगवन्! इतना मेरा सद्भाग्य नहीं।।५।।

प्रतिदिन की छोड़ो बात प्रभो! दिन में भी आना मुश्किल है।
इसलिये रात में आया हूँ दिन में आना न सम्भव है।।
सब आप जानते हैं प्रभुवर! क्या कहूँ आपसे हे भगवन्!।
बस यही चाहता हूँ स्वामिन्! कैसे छूटे भव का बन्धन ।। ६ ।।

मैं कैसे करूँ प्रार्थना कुछ सबकुछ पहले से निश्चित है।
उसमें वह फेरफार करना जो इच्छित है ना संभव है।।
जो निश्चित है सो निश्चित है यह दिव्यध्वनि में आया है।
यह कथन किसी से छुपा नहीं सबके सुनने में आया है।। ७ ।।

यह बात आपने बतलाई हम सभी जानते हैं यह सब।
कुछ भी कहने की बात नहीं है आप जानते हैं सबकुछ।।
इतना कह के कुछ शान्त हुये भरतेश्वर चिन्तन मुद्रा में।
वे चले गये वे चले गये अन्तरमुख अपने अन्तर में।। ८ ।।

अर्धरात्रि में अरे अचानक दिव्यध्वनि की गूँज हुई।
दिव्यध्वनि सुनने को मिलकर सारी जनता उमड़ पड़ी।।
सभी सोचने लगे अचानक मध्यरात्रि में दिव्यध्वनि।
कैसे खिरी बताओ तुम भी सभी ओर से एक ध्वनि।। ९ ।।

तब कहा किसी ने भरतेश्वर दर्शन के लिये पधारे हैं।
उनके निमित्त से असमय में भी दिव्यध्वनि का लाभ मिला।।
असमय में आये भरतराज असमय में दिव्यध्वनि गूँजी।
रे भरतराज हैं भाग्यवान उनके कारण ही ध्वनि गूँजी।। १०।।

मध्यरात्रि में दिव्यध्वनि गूंजी भरतेश्वर के कारण।
यह बात नहीं है साधारण यश फैला है इसके कारण।।
माँ यशस्वती नन्दा देवी अति ही प्रसन्नता से बोलीं।
यह भरतराज मेरा बेटा जग में है महाभाग्यशाली।।११।।

भरतेश्वर बोले माता से हे माँ ! मैं नहीं भाग्यशाली।
चाहे जो कुछ भी कहो किन्तु मत कहना मुझे भाग्यशाली।।
रे महाभाग्यशाली वे हैं जो प्रतिदिन दिव्यध्वनि सुनते।
हैं वृषभसेन तेरे बेटे प्रभुजी के गणधर बने हुये।।१२।।

उनके समक्ष मैं क्या हूँ माँ? वे ऋषभेश्वर के साथी हैं।
वे तो हैं महासन्त मुनिवर निज आतम के अभ्यासी हैं।।
आरम्भ हुई है जिस दिन से श्री ऋषभेश्वर की दिव्यध्वनि।
वे उस दिन से प्रतिदिन सुनते न छोड़ी उनने एक घड़ी।।१३।।

किन्तु अभागा बेटा[1] यह तो कभी नहीं जा पाता है।
दिन में तो समय नहीं मिलता इसलिये रात में आता है।।
मेरे कारण यदि असमय में भी दिव्यदेशना प्राप्त हुई।
कैसे हो गया भाग्यशाली तुम ही बोलो मेरी माई !।।१४।।

जिनवाणी सुनना महाभाग्य जो महाभाग्य से मिलता है।
पर विषयलोलुपी सारा जग विषयों में उलझा रहता है।।
जो सुनते हैं प्रीतिपूर्वक प्रतिदिन जिनवर की वाणी।
वे साधारण जन भी हैं समझो मुझसे अधिक भाग्यशाली।।१५।।

---

१. अभागा भरत, परिशिष्ट-१

मुझको मिलता अवकाश नहीं रे रंचमात्र भी दिनभर में।
हे माँ! मैं उलझा रहता हूँ दुनियादारी के चक्कर में।।
बेटा तू महाभाग्यशाली तू चक्ररत्न का स्वामी है।
तू ऋषभेश्वर का प्रथम पुत्र तू सारे जग में नामी है।। १६।।

यह चक्ररत्न सौभाग्य नहीं दुर्भाग्य दिखाई देता है।
प्रतिदिन जिनवाणी सुनने का सौभाग्य न मिलने देता है।।
जिस दिन जिनवाणी शुरू हुई उस दिन छाती पर आ बैठा।
किस दुविधा में मैं उलझ गया मेरी कुछ समझ नहीं आता।। १७।।

प्रतिदिन दिन में प्रत्येक बार हो दो घण्टे चौबीस मिनट।
प्रतिदिन दिन में नित तीन बार खिरती है जिनवर की वाणी।।
इसतरह रोज ही खिरती है कुल बारह मिनट सात घण्टे।
सब काम छोड़ दुनियाँ सुनती ना गिनती है सण्डे-मण्डे।। १८।।

दिग्विजय यात्रा करने को मैं चला हजारों वर्षों तक।
सदा भटकता रहा निरन्तर खण्ड-खण्ड छह खण्डों में।।
सारा जग सुने दिव्यध्वनि को मैं रहूँ भटकता दुनियाँ में।
कैसा मैं महाभाग्यशाली जो रहा भटकता दुनियाँ में।। १९।।

मत कहना मुझे भाग्यशाली मुझको गाली सी लगती है।
बस लड़ो-लड़ो लड़ते ही रहो - यह बात न अच्छी लगती है।।
दुनियाँ से लड़ो लड़ते ही रहो अर लड़ो-लड़ो की बात करो।
बोलो बोलो बोलो माई! क्या भाग्य इसी को कहते हैं?।। २०।।

क्या भाग्य इसी को कहते हैं सद्भाग्य इसी को कहते हैं ?।
यह भरत अभागा ही अच्छा इसको ऐसा ही रहने दो।।
मत करो प्रशंसा मेरी अब मुझको काँटों-सी चुभती है।
मीठी-मीठी झूठी शंसा अब मुझको बहुत अखरती है ।। २१।।

इस मानव भव में चक्रवर्ती हो सर्वाधिक वैभवशाली।
आखिर में यह सारा वैभव बस एक परिग्रह ही तो है।।
और पाँचवाँ पाप परिग्रह सारी दुनियाँ जाने यह।
भले प्राप्त हो पुण्योदय से आखिर में तो पाप ही है।। २२।।

अरे पाप का पिण्ड परीग्रह संकट ही तो लायेगा।
अधिक कहें क्या विध-विध की विपदाओं में उलझायेगा।।
और भाई को भाई से ही लडने को उकसायेगा।
सोचो यह कितना अच्छा है? है अंश नहीं अच्छाई का।। २३।।

इसके रहते हम यदी मरे तो नरकों में ही जावेंगे।
इसे त्याग कर साधु हुए तो स्वर्ग-मोक्ष में जावेंगे।।
यह अभाग्य की सीमा है यह है सचमुच विष की प्याली।
इसके कारण क्यों कहते तुम मुझको महाभाग्यशाली।। २४।।

हे महामात्य! हे सेनापति! मैंने जो माँ से बात कही।
वह बात आपसे कहता हूँ जो नहीं आपसे कभी कही।।
इस चक्ररत्न का मिलना यद्यपि महाभाग्य से होता है।
यह चक्ररत्न पर दिव्यध्वनि सुनने में बाधक होता है।। २५।।

यद्यपि यह बात अखरती है पर अब यह सब करना होगा।
निधत्ति–निकाचित कर्मों को तो हमें भोगना ही होगा।।
गले पड़े इस चक्ररत्न को हमें निभाना ही होगा।
सहजभाव से जो कुछ है उसको अपनाना ही होगा।। २६।।

यद्यपि मैं नहीं चाहता हूँ पर ठुकराना भी सम्भव ना।
अब अपनाना तो होगा ही दिल से अपनाना सम्भव ना।।
जो कुछ भी है जैसा भी है अपने ही भावों का फल है।
यद्यपि यह अपना नहीं किन्तु अब तो समझो अपना ही है।। २७।।

अब तो समझो अपना ही है जो कुछ भी है जैसा भी है।
जब छोड नहीं सकते इसको तब यह दायित्व हमारा है।।
जब तक है अविरत गुणस्थान तब तक तो अरे रहेगा ही।
अब अधिक विकल्पों से क्या हो सब काम समय पर ही होगा।। २८।।

रे सुनो अभागा भरत आपसे एक निवेदन करता है।
है नहीं शक्ति की कोई कमी पर मुझको हिंसा इष्ट नहीं।।
दिग्विजय चाहता हूँ ऐसी जिसमें न खून की बूँद बहे।
बोलो मन्त्रीगण सेनापति! ऐसा भी तो हो सकता है।। २९।।

दिग्विजय यात्रा मेरी यह सद्भाव यात्रा बन जावे।
सद्भाव यात्रा का स्वरूप वात्सल्य भाव से समझावें।।
सन्देश मित्रता का भाई अत्यन्त नेह से भिजवावें।
साम–दाम से काम करें पर दण्ड–भेद में ना जावें।। ३०।।

जो कहा आपने सभी सत्य पर देश अखण्डित होगा तो।
जिनवाणी की सत्य देशना का भी लाभ मिले सबको।।
चक्ररत्न भी शत्रु नहीं वह हम सबका सहयोगी है।
जो जैसा आप कहेंगे जब वैसा ही काम करेंगे हम।। ३१।।

हम सभी अहिंसक हैं राजन्! सब ऋषभेश्वर के अनुयायी।
हम सभी जानते हैं कि आप भी सच्चे उनके अनुयायी।।
अन्तर से भोगों से विरक्त श्रद्धानी ज्ञानी ध्यानी हैं।
अनुभवी आत्मा के स्वामिन्! अन्तर से आतमज्ञानी हैं ।। ३२।।

दिग्विजय यात्रा में स्वामिन्! ना एक खून की बूँद बहे।
ना कोई सामना करे और ना कोई सामना कर सकता।।
सब शक्ति को पहिचानेंगे सद्भाव आपका जानेंगे।
सहज भाव से ही सब जन सहयोगी भी बन जायेंगे।। ३३।।

जो तुम कहते सब बात सही पर समय सहज ही जाता है।
अर ऋषभदेव की वाणी का सद्लाभ नहीं मिल पाता है।।
अर अपने आतमहित का भी कुछ काम नहीं हो पाता है।
इसमें ही उलझे रहते हैं सब समय व्यर्थ में जाता है।। ३४।।

हम सभी रखेंगे ध्यान आपके भावों को पहिचानेंगे।
हम देखेंगे सब काम आपको अधिक नहीं उलझावेंगे।।
यदि मिल जावे हमें आपका थोड़ा-बहुत मार्गदर्शन।
उसके ही अनुसार हम सभी कामों को निबटा लेंगे।। ३५।।

आधी तो हो गई विजय अब आधी ही तो शेष रही।
उसे अधूरी रहने देना किसी तरह भी योग्य नहीं।।
किसी तरह भी पूरा करना होगा इस विजयी क्रम को।
और व्यवस्थित करना होगा जन–जन के जीवन क्रम को।।३६।।

आप व्यवस्थित रखें निरन्तर अपनी दैनिक चर्या को।
चिन्तन–मनन करें आवश्यक और तत्त्व की चर्चा को।।
खान–पान सब यथासमय जैसा जो कुछ आवश्यक है।
सब कुछ वैसा ही करें प्रभो! जैसा जो कुछ आवश्यक है।।३७।।

निज आतम के कल्याण हेतु जो करना अति आवश्यक है।
प्रतिदिन करने के योग्य प्रभो! जो कार्य परम आवश्यक हैं।।
उन सब कार्यों की रंच उपेक्षा करना प्रभुवर योग्य नहीं।
ये राजकाज चलते ही रहेंगे इनकी चिन्ता योग्य नहीं।।३८।।

इन सबकी चिन्ता करने को हम लोग हमेशा हाजिर हैं।
यदि होगा अति आवश्यक कुछ तो सेवा में हाजिर होंगे।।
वह भी असमय में नहीं प्रभो ! समयानुसार हाजिर होंगे।
समय–समय पर अवगत कर हम यथायोग्य आज्ञा लेंगे।। ३९।।

यह सब तो है ठीक किन्तु जो मुझको सदा अखरता है।
इन हारों[१] और उपहारों का व्यवहार न मुझको रुचता है।।
इन कन्याओं की भेंट चित्त को उद्वेलित कर देती है।
परिणय करने की बात चित्त को आन्दोलित कर देती है।।४०।।

---

१. मालायें

इसका उपाय करना होगा क्या हो सकता तुम बतलाओ।
हलके में लेना योग्य नहीं सोचो सोचो फिर बतलाओ।।
यह बात नहीं है साधारण इसकी गहराई में जाओ।
जल्दी–जल्दी की बात नहीं सोचो–समझो फिर बतलाओ।। ४१।।

प्रतिदिन यह सबकुछ ठीक नहीं इसको समाप्त करना होगा।
आखिर हम सबको ही सोचो कुछ सीमा में रहना होगा।।
इसतरह असीमित प्रतिदिन ही परिवार बढ़ाना[१] ठीक नहीं।
आदर्श नहीं है यह वृत्ति इसको अपनाना ठीक नहीं।।४२।।

यह बात नहीं है वृत्ति की यह तो अति ही आवश्यक है।
गहराई से सब जुड़े रहें अतएव परम–आवश्यक है।।
जो बहिन–बेटियाँ देंगे वे विद्रोह नहीं कर सकते हैं।
वे धोखा देंगे नहीं कभी विश्वास योग्य हो सकते हैं।।४३।।

यह देश संगठित करने की अर देश संगठित रखने की।
सोची–समझी रणनीति है यह देश अखण्डित रखने की।।
अपनी रक्षा करते देकर हम लेकर रक्षित होते हैं।
ऐसा करके ही तो हम सब निश्चिन्त सदा रह सकते हैं।।४४।।

कुछ बात नहीं कुलवृद्धि की न इच्छा पूरी करने की।
हम सब आपस में बंधे रहें सम्बन्धों की गहराई से।।
इन सम्बन्धों के पीछे तो बस यही भावना सबकी है।
अतः आप भी इन सबको बस सहज भाव से स्वीकारें।।४५।।

१. शादी करके परिवार बढ़ाना ठीक नहीं

यह सब ऐसा ही चलता है इसको ऐसा ही चलने दें।
इसकी महिमा ऐसे में है न अधिक विकल्पों में उलझें।।
इसका स्वरूप ऐसा ही है इस पर न ज्यादा सोच करें।
माथे पर बोझा ना लेवें जो होता है सो होने दें।।।४६।।

हम सभी जानते हैं कि आप विषयों में रत ना अन्तर से।
इन सबसे रहते हैं विरक्त ना जुड़ते इनमें अन्तर से।।
पर चक्रवर्ती के जीवन में संयोग सदा जुड़ते रहते।
वे अपने में ही रहते हैं इनमें ना कभी उलझते हैं।।४७।।

यह सब है व्यवहार आप तो निश्चयवृत्ति वाले हैं।
अपने में अपनापन धारें परमार्थ निवृत्ति वाले हैं।।
देश अखण्डित करने में सारे व्यवहार निभाते हैं।
पर जब अपने में आते हैं तो अपने में जम जाते हैं।।४८।।

जब आप ध्यान में जाते हैं सब अंग शिथिल हो जाते हैं।
अधिक कहें क्या सब अंगूठियाँ धरती पर गिर जाती हैं।।
यह एक दिवस की बात नहीं प्रतिदिन ऐसा ही होता है।
अपने में सदा रचे रहते विश्राम कभी ना होता है।। ४९।।

सब व्यवहारों में पूर्ण चतुर पर निश्चयवृत्ति वाले हैं।
अपने में रहते सदा मगन सारे व्यवहार निभाते हैं।।
व्यवहार और निश्चय नय में सम्पूर्ण सन्तुलन रहता है।
अन्तर में शान्ति बनी रहती बाहर में चलता रहता है।। ५०।।

भरतेश ! आपका जीवन तो रे अरे देखने लायक है।
हम गीत कहाँ तक गायेंगे सबको अपनाने लायक है।।
हैं एकमात्र आदर्श पुरुष जन–जन जिनकाअनुकरण करें।
है जीवन भी आदर्श अरे जन–जन जिसका अनुसरण करे।।५१।।

भोगी हैं अथवा योगी हैं यह बात समझ में नहिं आती।
सब चाहें कुछ भी ना चाहें यह बात समझ में नहिं आती।।
लड़लड़कर सभी जीतते हैं पर आप जीतते बिना लड़े।
राज जीतते हैं सब जन पर आप जीतते मन सब के।।५२।।

अरे जीतने से मन के सब अपने ही हो जाते हैं।
और बढ़ाओ हाथ तो सब जन सहज मित्र बन जाते हैं।।
यदि माँगो सहयोग तो सब जन सहयोगी बन जाते हैं।
यदी सहज हो जावो तुम तो सभी सहज हो जाते हैं।।५३।।

यदि असीम हो शक्ति तो फिर कोई सामने नहिं आता।
यदि सहज रहे शक्तिशाली समझौते को आगे आते।।
अपन रहें यदि सहज सरल तो बात सहज ही बन जाती।
हैं अपन एकदम सहज सरल तो बात एकदम बन जाती।।५४।।

देश संगठित करने में हिंसा का कोई काम नहीं।
वात्सल्यभाव से सभी काम हो जाते हैं सब सही–सही।।
यदि भाव अपावन हों अपने दुनियाँ कैसे पावन होगी।
यदी परमपावन हैं हम तो दुनियाँ भी पावन होगी।।५५।।

वृषभसेन अर अनन्तवीर्य ऋषभेश्वर की वाणी सुनकर।
उनके मारग पर चले गये उनसे पावन दीक्षा लेकर।।
यदि न होता चक्ररत्न तो मैं भी तो जा सकता था।
अधिक कहें क्या हे भाई! मैं भी दीक्षा ले सकता था।।५६।।

यह चक्ररत्न सौभाग्य नहीं मुझको अभाग्य सा लगता है।
संयम लेने में बाधक यह, यह तो अभाग्य सा फलता है।।
सब लोग परिग्रह छोड़ रहे मैं उसे जोड़ता जाता हूँ।
मैं अरे सुलझना चाह रहा पर और उलझता जाता हूँ।।५७।।

मैं रहा डोलता दुनियाँ में, वे तो अपने में चले गये।
वे मेरे छोटे भाई थे पर आज बन गये बहुत बड़े।।
अब न वे मेरे भाई हैं अब तो गुरुदेव हमारे हैं।
वे परमपूज्य हो गये और हम उनके ही अनुयायी हैं।।५८।।

जो घर में हैं वे सभी अनुज हमको प्राणों से प्यारे हैं।
कुल के दीपक माँ जाये वे हम सबके राज दुलारे हैं।।
श्री बाहुबली जो महाबली वे तो युवराज हमारे हैं।
ये सभी हमारे भाई बन्धु मेरी आँखों के तारे हैं।।५९।।

इन अखण्ड छह खण्डों का सम्पूर्ण प्रशासन अब हमको।
मिलजुल कर करना है भाई शासन करना है हम सबको।।
इस तरह प्रशासन अनुशासन शासन करना है हम सबको।
हम सब मिलकर सानन्द रहें – यह ही करना है हम सबको।।६०।।

रे छह खण्डों के इस अखण्ड भारत पर शासन करने का।
हम सबके ही पुण्योदय से हम सबको यह सौभाग्य मिला।।
इक्ष्वाकुवंश के गौरव को अब हमें निभाना ही होगा।
इसकी महिमा गौरव गरिमा को हमें बढ़ाना ही होगा।। ६१।।

यह भरतभूमि हम सबकी है इसको सम्भालना है सबको।
अर ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ उठाना है सबको।।
वात्सल्यभाव से रहना है आतमहित करना है सबको।
सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरित भी धारण करना है सबको।। ६२।।

आदर्श गृहस्थ जीवन जीना अर यथासमय संयम धरना।
जो सहजभाव से सम्भव हो जीना–मरना करना–धरना।।
आकुलता का काम नहीं रे सदा निराकुल ही रहना।
अपने में अपनापन रखना अपने में नित्य रमे रहना।। ६३।।

आखिर तो करने योग्य एक ही काम हमें जो करना है।
अपने आतम में जमना है अपने आतम में रमना है।।
अपने आतम में जम–रम कर अपने में पूर्ण समा जाना।
आखिर में एक काम ही तो हमको तुमको सबको करना।। ६४।।

मेरी तो यही भावना है मैं यही चाहता हूँ भाई।
सारा जग सुख से रहे सदा मैं यही चाहता हूँ भाई।।
जोड–जोडकर क्या करना आखिर तो छोडना है सबको।
अपने आतम में ही जम कर आतमहित करना है सबको।। ६५।।

जब तक इस जग में रहना है वात्सल्यभाव से रहना है।
ना लडना है न झगडना है मिलजुलकर सबको रहना है।।
जो कुछ भी है जितना भी है सब यहीं छोडकर जाना है।
न साथ में कुछ भी जाना है सब यहीं पड़ा रह जाना है।। ६६।।

साधर्मी वात्सल्य सभी में होना अति आवश्यक है।
सहयोग परस्पर में सबका करना भी अति आवश्यक है।।
सुख-दु:ख में साथ निभाना है पूरा व्यवहार निभाना है।
निश्चय में निश्चल रहना है सबको आतम हित करना है।। ६७।।

हम सब हैं आदर्श जगत के जो हमसे कारज होंगे।
वही करेगा सारा जग हम ही उसके कारण होंगे।।
राजा होता जैसा जग में वैसी ही होती सभी प्रजा।[१]
हम चलें यदी सन्मारग पर सन्मारग पर ही चले प्रजा।। ६८।।

अत: सजग रहना होगा हमसे कोई दुष्कर्म न हो।
हमसे हों अच्छे काम सदा जिनका दुनियाँ अनुकरण करे।।
हम ऐसे हों आदर्श पुरुष जिनको सारा जग याद रखे।
हम ऐसे काम करें जग में जिनसे जग में इतिहास बने।। ६९।।

(दोहा)

कही अरे भरतेश ने, अपने मन की बात।
सबको समझाई अरे, न्याय-नीति की बात।। ७०।।

इसप्रकार भरतेश ने, सबको लेकर साथ।
सबको आनन्दित किया, और बढ़ाया हाथ।। ७१।।

शेष विजय यात्रा अरे, करना है आरम्भ।
सब तैयारी में जुटें, अरे सभी सानन्द।। ७२।।

१. यथा राजा, तथा प्रजा।

-●-

भरत का अन्तर्द्वन्द्व
पाँचवाँ अध्याय

(दोहा)

करके आदि जिनेश को, वन्दन बारम्बार।
तीन खण्ड को जीतने, विजयारध के पार।। १।।

जाने को तैयार हैं, भरतेश्वर महाराज।
सब सेना तैयार है, भरतराज के साथ।। २।।

(मानव)

हिमवन से निकली नदियाँ गंगा-सिन्धु अति मनहर।
पूरब-पश्चिम सागर में क्रमशः गिरती हैं जाकर।।
पूरब सागर में गंगा सिन्धु पश्चिम सागर में।
विजयार्द्ध पार करतीं वे गिरि की गम्भीर गुफा से।। ३ ।।

दिग्विजय चक्रवर्ती की आधी हो जाने से ही।
है नाम पड़ा है जिसका विजयार्द्ध गिरि अति मनहर।।
पूरब से पश्चिम तक वह फैला है सागर तट तक।
है भरतक्षेत्र के भीतर विजयार्द्ध गिरि अति सुन्दर।। ४।।

अति ही गम्भीर-गुफायें दो हैं विजयार्द्ध गिरि में।
उनमें से गंगा-सिन्धु पूरव-पश्चिम सागर में।।
जाकर गिरती हैं कल-कल करती जाती हैं सत्वर।
सबके मनको हरती हैं नदियाँ हैं अति ही सुन्दर।।५।।

विजयार्द्ध पार उत्तर के तीनों म्लेच्छ खण्डों को।
अपने अधीन करने को सम्राट भरत राजा ने।।
विजयार्द्ध पार करने का मन में संकल्प किया है।
सेना को सेनापति को तत्क्षण आदेश दिया है।। ६ ।।

पर्वत की उसी गुफा से जिससे है सिन्धु निकलती।
जाना होगा हम सबको तैयारी अपनी-अपनी।।
सब लोग शीघ्र ही करलें तैयारी पूरी-पूरी।
आदेश मिले जब अन्तिम तब सबको चलना होगा।। ७ ।।

आदेश मिला तब सेना सिन्धु[१] का अवलम्बन ले।
विजयार्द्धगिरि की गुफा के अत्यन्त पास जा पहुँची।।
फिर दण्डरत्न के द्वारा जब गुफाद्वार को खोला।
विस्फोट हुआ तब भारी निकली थी भीषण ज्वाला।। ८ ।।

निकलीं लहराती लपटें भीषण गर्मी की लहरें।
झुलसाती गहरे वन को पीड़ित करतीं जन-जन को।।
जंगल के पशु-पक्षी भी आकुल-व्याकुल हो भागे।
वे जहाँ-जहाँ जाते थे ज्वालायें आगे-आगे।। ९ ।।

---

१. सिन्धु नामक नदी

ज्वाला जंगल में फैली तब वृक्ष-लतायें झुलसीं।
मुरझाया सारा जंगल बेलें आपस में उलझीं।।
यह ज्वाल शान्त होने में छह माह लग गये तब फिर।
उसमें प्रवेश करने को सेना तैयार हुई अब।। १०।।

परवेश किया सेना ने अन्धेरी गहन गुफा में।
परकाश हो रहा पूरण काँकिणी रत्न के द्वारा।।
मारग में नदियाँ आईं उन्मग्ना और निमग्ना।
तट पर विश्राम किया था तब थकी हुई सेना ने।।११।।

यह गहन निमग्ना सरिता सबको नीचे ले जाती।
रे अरे उमग्ना सरिता सबको उछाल देती है।।
वे विषम स्वभावी नदियाँ सिन्धु[1] में मिल जातीं हैं।
उन्हें पार करने को पुल बनवाया लकड़ी का।। १२।।

स्थपती[2] रत्न ने श्रम से अपनी बुद्धि के बल से।
सुन्दरतम पुल बनवाया सब पार हुये उस पुल से।।
तब सेना सहित भरत ने दुर्गम गिरि विजयारध को।
उस पार किया अर पहुँचे उत्तर भारतभूमि[3] में।। १३।।

जब चक्रवर्ती भरतेश्वर उत्तर भारत[4] में पहुँचे।
हाथी घोड़े रथ पैदल चतुरंगी सेना लेकर।।
लख शक्तिपुंज चक्रेश्वर कुछ समझदार राजा तो।
रे समझ गये थे सबकुछ कुछ समझाने से समझे।। १४।।

१. सिन्धु नामक नदी २. सिलावट, कारीगर ३ व ४. भरत क्षेत्र

अधिकांश नरेश स्वयं ही आकर उनके चरणों में।
झुक गये और विध-विध के दीने उपहार अनेकों ।।
बहिन-बेटियाँ ब्याही सम्बन्ध बनाये मधुरिम।
सब विध सहयोगी बनकर कीना सम्पूर्ण समर्पण।। १५।।

कुछ समझाने से समझे कुछ धमकाने से समझे।
कुछ उछले-कूँदे फिर भी आखिर में वे भी समझे।।
कतिपय चिलात[१] से राजा एवं आवर्त[२] महीपति।
लड़ने-भिड़ने को आये वे भी आखिर में समझे ।। १६।।

श्री जयकुमार सेनापति अर महामात्य ने सब कुछ।
आगा-पीछा समझाया शक्तीबल भी दिखलाया।।
अर सहज मित्रता के भी तो सभी लाभ समझाये।
वात्सल्यभाव से सबको वे सही राह पर लाये ।। १७।।

ना हुआ प्रताड़ित कोई ना कोई जेल में डाला।
ना किया अपंग किसी को अर नहीं किसी को मारा।।
वात्सल्यभाव से सबको सबके मन को था जीता।
इक बूँद भी खून बहा ना अर छह खण्डों को जीता।। १८।।

जब छह खण्डों को जीता अर वृषभाचल पर पहुँचे।
देखा उस खण्डशिला को जिस पर नामावलि अंकित।।
अगणित चक्रेश्वरियों की नामावलि और प्रशस्ति।
अब और नाम लिखने को किंचित् भी जगह नहीं थी।। १९।।

१ व २. राजाओं के नाम

वे सोच रहे थे मन में मैं ही पहला चक्री हूँ।
इन छह खण्डों को मैंने सबसे पहले जीता है।।
अब इसे भोगनेवाला मैं ही पहला नायक हूँ।
यह सब विभूति है मेरी मैं ही इसका मालिक हूँ।। २०।।

यह भूमि अछूती अबतक जिसको मैं भोग रहा हूँ।
है नहीं किसी ने भोगा इसको मैं भोग रहा हूँ।।
इस भरतभूमि का मालिक मैं ही हूँ एक अनोखा।
ऐसी निगाह से अबतक है नहीं किसी ने देखा।। २१।।

पर आज यहाँ क्या देखा कि मुझे नाम लिखने को।
रंचक भी जगह नहीं है मेरी प्रशस्ति लिखने को।।
चक्रेश्वरियों के नामों से पूरी शिला भरी है।
इनने ही अब तक समझो यह भरतभूमि भोगी है।। २२।।

रे भोग-भोग कर छोड़ी यह तो उनकी जूठन है।
अब आई है यह जूठन समझो मेरे हिस्से में।।
अब चाह नहीं है मुझको रे रंचमात्र भी इसकी।
ना रंचमात्र भी मुझको है भाव इसे पाने का।। २३।।

रे नहीं भावना मेरी है नाम लिखाने की भी।
पर नाम लिखाना होगा होता नियोग ऐसा ही।।
है करम निकाचित यह ही जिससे हम प्रेरित होते।
भोगे बिन ना रे इसको कुछ काम नहीं चलता है।। २४।।

(वीर)

स्वयं मिटाकर एक नाम फिर उनने अपना नाम लिखा।
अरुचिपूर्वक सही किन्तु भरतेश्वर ने इतिहास रचा।।
अरे बनाया नहीं किन्तु वह तो अपने ही आप बना।
सहजभाव से ही यह सब कुछ तो अपने ही आप घटा।। २५।।

अरे नाम के साथ प्रशस्ति भी तो गई लिखाई थी।
यह सब होते हुये उन्हें यह बात समझ में आयी थी।।
अगला चक्रवर्ती आवेगा एक दिवस जब ऐसे ही।
मेरा नाम मिटाकर तब वह अपना नाम लिखेगा ही।। २६।।

रे अनादि से इस जग में ऐसा ही चलता आया है।
जब तक संसार चलेगा यह आगे भी चलेगा ऐसा ही।।
चक्रवर्ती का पुण्य निकाचित ही तो होता है भाई।
भोगे बिना नहीं कटता न चले कोई भी चतुराई।। २७।।

नहीं चाहते फिर भी यह सब ऐसा चलता रहता है।
जैसा नियोग होता है वैसा ही विचार भी बनता है।।
वैसे ही होते काम सभी वैसा ही चिन्तन चलता है।
सभी भाव वैसे ही बनते वैसा मन्थन चलता है।। २८।।

(विष्णु[१])

इसतरह भरत के अन्तर में नित अन्तर्द्वन्द चले।
नहीं कांक्षा भोगों की भोगों से रहें घिरे।।
टारे से ना टरें निकाचित कर्म सुनो भाई।
पुण्योदय की मजबूरी भी आज समझ आई।। २९।।

१. कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम अरु लक्ष्मण, जिन रावण मारा।। की धुन पर गायें।

पुण्योदय की मजबूरी यह ज्ञानीजन भोगें।
वे भोगें या नहीं इसे तो वे ही पहिचानें।।
समझ नहीं आता है कुछ भी अज्ञानीजन को।
वे नहीं जानते रंचमात्र भी ज्ञानी के मन को।।३०।।

वे नहीं जानते भावभूमि चौथे गुणथानक की।
इसीलिये उनके मन में नित उलझन ही रहती।।
अगणित भोगों के बीच रहें अर उन्हें नित्य भोगें।
यह सब कैसे हो सकता वे बार-बार सोचें।। ३१।।

रनिवासों के बीच रहें पर लिप्त नहीं होते।
अगणित भोगों के बीच रहें पर उन्हें नहीं भोगें।।
यह सब कैसे हो सकता कुछ समझ नहीं आता।
कोई कुछ भी कहें हमें स्वीकार नहीं होता।। ३२।।

हमें स्वीकार नहीं होता चित्त में बात नहीं जमती।
भाँति-भाँति की शंका चित में नित उठती रहती।।
किससे समझें कौन बतावे समझ नहीं आता।
क्यों ना पूछें भरतराज से यह विकल्प आता।। ३३।।

जब यह चरचा भरतराज के कानों में आई।
यह बात भरत ने उसको भाई कैसे समझाई।।
एक तेल से भरा कटोरा हाथों में देकर।
इसको भाई जावो तुम रनिवासों में लेकर।। ३४।।

सभी रानियों को दिखलाओ कपड़े–गहनों में।
सजी हुई तैयार एकदम अपने महलों में।।
सभी दिखाओ और खिलाओ विध–विध के पकवान।
ऐसी सेवा करो कि जैसे आये हों मिहमान।।३५।।

इनका स्वागत खूब करो मालाओं से लादो।
इनकी सेवा में दो–दो तुम नौकर रखवा दो।।
दो सैनिक भी साथ रखो आगे–पीछे इनके।
हाथों में नंगी तलवारें सदा रहे जिनके।।३६।।

और सैनिकों से भरतेश्वर क्रोधित हो बोले।
यदी तेल की एक बूँद भी भूमि पर फैले।।
धड़ से मस्तक अलग करो बस उसी एक क्षण में।
मेरा यह आदेश समझलो भली–भाँति मन में।।३७।।

उससे बोले भरतेश्वर तुम सब देखो–जानो।
और सभी भोगोपभोग भी भोगो मनमाने।।
करो नहीं संकोच, करो वह जो मन में आवे।
इतना रखना ध्यान तेल की बूँद न गिर जावे।।३८।।

सोना चाँदी रत्न जवाहर जो चाहो ले लो।
जैसा चाहो वैसा ही तुम भोजन बनवालो।।
जितना चाहो उतना ले लो जो चाहो खा लो।
भोग और उपभोगों से तुम अपना मन भर लो।।३९।।

इतना रखना ध्यान कटोरा हाथों में रखना।
एक बूँद भी तेल अरे धरती पर ना गिरना।।
एक बूँद भी गिरी तो बेटा मारे जावोगे।
कितने जोड़ो हाथ किन्तु फिर बच ना पावोगे।। ४०।।

दिनभर घूमा किन्तु नहीं वह कुछ भी कर पाया।
दिनभर भूखा रहा किन्तु कुछ भी ना खा पाया।।
भोग और उपभोगों को भी भोग नहीं पाया।
भरे कटोरे को सम्भालने में ही दिन खोया।। ४१।।

साँझ हुई तो भरतेश्वर के चरणों में आया।
शीश झुकाकर नम्रभाव से सब कुछ बतलाया।।
शंकाओं का समाधान हो गया पूर्णतः अब।
इसी तरह मिल गये हमें प्रश्नों के उत्तर सब।। ४२।।

मेरे ही तो नहीं प्रभो! यह प्रश्न हजारों के।
मेरे जैसे प्रभो! लोक में लोग हजारों हैं।।
उन सबके प्रश्नों का उत्तर आज मिल गया है।
इस घटना से चित्त सभी का साफ हो गया है।। ४३।।

निज आतम की ही सम्भाल में व्यस्त रहें भरतेश।
इसीलिये सब भोग भोगते रहें अभोगे से।।
भोगे और नहीं भोगे कुछ भी कह सकते हैं।
जैसे मैंने नहीं भोगकर भी तो भोगें हैं।। ४४।।

(दोहा)

इसप्रकार भरतेश ने, जीते उत्तर खण्ड।
अब तैयारी में जुटे, अवधपुरी के पन्थ।। ४५।।

–●–

भरत का अन्तर्द्वन्द्व
छठवाँ अध्याय

(दोहा)

छह खण्डों को जीतकर, मन में हर्ष अपार।
भरतेश्वर आ गये हैं, अवधपुरी के द्वार।। १।।

(रेखता)

भरत ने जीत लिये छह खण्ड दिग्विजय यात्रा पूरी हुई।
अरे लगभग हो गई समाप्त किन्तु वह अभी अधूरी रही।।
सभी के मन में था आनन्द और खुशियाँ थी अपरम्पार।
अरे यह चक्ररत्न रुक गया अचानक अवधपुरी के द्वार।। २ ।।

सभी को चिन्ता होने लगी अचानक यह सब कैसे हुआ।
भरत भी लगे सोचने अरे अचानक यह सब कैसे हुआ।।
अरे रे तभी किसी ने कहा आपके भाई आये नहीं।
अर परममित्र युवराज भुजबली अभी पधारे नहीं ।। ३।।

भरत ने कहा भूल हो गई सभी को परमादर के साथ।
अरे आमंत्रण भेजो अभी भेंट भेजो दूतों के हाथ।।
और युवराज बाहुबलि को अरे पूरे सन्मान के साथ।
भेंट भेजो आमंत्रित करो अरे रे महादूत के हाथ।।४।।

भाइयों के बिन यह दरबार कभी भी शोभित होगा नहीं।
सभी के योग्य उच्च आसन सुसज्जित करके लगवावो।।
बाहुबलि हैं मेरे युवराज वे मेरे पास विराजेंगे।
तभी शोभित होगा दरबार भाई जब होंगे मेरे साथ।। ५ ।।

अरे हम सभी ऋषभ के पुत्र उन्हीं के राजदुलारे हैं।
सभी हैं मेरे छोटे भाई मुझे प्राणों से प्यारे हैं।।
अरे यह छह खण्डों का राज्य हमारा है हम सबका है।
और इसका विकास करना न अकेले मेरे बस का है।। ६ ।।

अरे छह खण्डों का साम्राज्य हमारे कुल में आया है।
सभी के पुण्योदय से बन्धु इसे हम सबने पाया है।।
अरे इसका यह उत्सव आज सभी को मिलकर करना है।
जगत के मध्य एक आदर्श हमी को प्रस्तुत करना है।। ७ ।।

अरे दूतों को यह समझाव कि वे अत्यन्त विनय के साथ।
सभी को आमन्त्रण देवें और आने का आग्रह करें।।
और मेरे भावों को सभी भाइयों तक पहुँचावें दूत।
कोई भी ऐसा कुछ न कहे किसी को न हो जो अनुकूल।। ८ ।।

सभी को बुलवाना है मुझे नेह से आदर से अत्यन्त।
और सबका रखना है मान सभी को देना है सन्मान।।
सभी को करना है परसन्न सभी को रखना अपने साथ।
किसी में भेदभाव ना रहे रहें सब अपनेपन के साथ।। ९ ।।

अरे रे बाहुबली के पास दूत जब पहुँचा था सानन्द।
विनय के साथ किया है नमन और करकमलों में दी भेंट।।
किया बाहूबलि का जयकार भरत के दिये सभी सन्देश।
भावभीना आमन्त्रण दिया किया उनसे अनुरोध विशेष ।। १०।।

अरे वात्सल्य भाव से भरे बड़े भाई तो हैं सानन्द।
कुशलता तो है सभी प्रकार और हैं पूरी तरह प्रसन्न।।
याद आती है उनकी बहुत और उनका अपार स्नेह।
कभी भी भूल नहीं पाते अरे उनका वात्सल्य विशेष।। ११।।

अरे हम साथ-साथ खेले और खाना-पीना भी साथ।
भले हम दो देहों में रहे किन्तु अन्तर में दोनों एक।।
भले ही वे अग्रज मैं अनुज नहीं हम दोनों में कुछ भेद।
आज भी हैं हम दोनों एक अधिक क्या कहें एक हैं एक।।१२।।

अरे हम खेल खेलते थे खेल में कभी हार जाता।
किन्तु जब मैं रोने लगता भरतजी मुझे जिता देते।।
अरे वे जीत-जीत कर भी अरे रे मुझे जिता देते।
अरे 'मैं हारूँ' यह उनको कभी बरदाश्त नहीं होता।।१३।।

कहा करते थे सबसे यही अरे बाहूबली सदा अजेय।
मुझे तो अच्छा लगता यही सदा ही जीते वह स्वयमेव।।
आज जीते उनने छह खण्ड और मैं पुलकित हूँ सर्वांग।
अधिक मैं क्या बोलूँ हे दूत? अरे रोमांचित हूँ सर्वांग।। १४।।

प्रभो ! यह बात पूर्णतः सत्य जानता है यह सारा लोक।
आपका अरे परस्पर प्रेम देखता है यह सारा लोक।।
आप दोनों होते जब साथ जगत में हो जाता आलोक।
सब जगह छा जाता आनन्द नहीं रहता है कोई शोक।। १५।।

अरे इक्ष्वाकुवंश का भाग्य कि उसमें तीर्थंकर का जन्म।
उसी में चक्रवर्ती जन्मे हुआ है कामदेव का जन्म।।
और गणधर भी इसमें हुये मुक्तिगामी भी हुये अनेक।
कहाँ तक इसकी महिमा करें एक से बढ़कर हैं सब एक।। १६।।

सभी राजाओं के बीच अरे युवराज और महाराज।
सुशोभित होंगे अतिशय दिव्य मनोहर मंगलमय महाराज।।
आपके बिना राजदरबार न शोभित होगा हे युवराज!।
आपको आना ही है देव! आपकी महिमा अपरम्पार।। १७।।

जीतकर छह खण्डों को भरत अयोध्या आये हैं सानन्द।
अरे सब जगह एक ही बात अरे आनन्द और आनन्द।।
आपके आने से युवराज सौगुना होगा सब आनन्द।
अरे महाराज और युवराज साथ में सब होंगे सानन्द।। १८।।

दूत! यह पाकर शुभ सन्देश हृदय मेरा उल्लसित अपार।
खुशी के अवसर पर सप्रेम उन्होंने मुझे किया है याद।।
हुआ मुझको आनन्द विशेष और खुशियाँ हैं अपरम्पार।
अरे भरतेश हुये चक्रेश बधाई देता सौ-सौ बार।। १९।।

अभी तो पहुँचे हैं अवधेश अरे रे अवधपुरी के द्वार।
पहुँचने दो उनको हे दूत! अभी तो राजमहल के पास।।
और करने दो कुछ आराम थकावट होने दो कुछ दूर।
और मैं आता हूँ अविलम्ब बधाई देने को भरपूर।। २०।।

आपका कहना तो है ठीक अचानक चक्ररत्न रुक गया।
भरत अर बाहुबली हों साथ और सब भाई भी हों साथ।।
सभी का यह कहना है प्रभु चक्र भी यही चाहता नाथ !।
सभी जन मिलकर स्वागत करें सभी का अरे एक ही साथ।। २१।।

आपके बिना आपके भाइ सुशोभित कैसे होंगे देव !।
आप से ही उनकी शोभा शतगुणी हो जाती है देव !।।
सभी जनता मिलकर हे देव! आप दोनों का स्वागत करे।
सभी की यही भावना है कि दोनों साथ–साथ में चलें।। २२।।

जुलूस की शोभा तब होगी आप दोनों होंगे जब साथ।
सभी जन अति प्रसन्न होंगे देखकर दोनों को इक साथ।।
आपकी जोड़ी अद्भुत है आप दोनों ही अनुपम हैं।
परस्पर है अद्भुत वात्सल्य आपका गौरव अनुपम है।। २३।।

दूत ! तुम समझदार हो बहुत और चतुराई से भरपूर।
बात को रखते हो इस भाँति कि उसमें रहे न कोई चूक।।
कहीं ऐसी तो नहीं है बात कि हमको भी अपने आधीन।
बनाना चाह रहे हों भरत, यद्यपि तुम हो बहुत प्रवीण।। २४।।

आप तो उनके प्रियतम अनुज और उनके ही हो युवराज।
उन्होंने राजाओं को नहीं सभी के मन को जीता आज।।
किसी को नहीं किया आधीन अरे स्वाधीन बनाया है।
अरे जोड़े उनसे सम्बन्ध और सम्बन्धि बनाया है ।। २५।।

आप तो उनके ही हैं प्रभो ! आपसे उनको बहुत लगाव।
स्थिति जो कुछ भी हो नाथ ! आपसे कैसे हो अलगाव।।
समस्या हो यदि कोई प्रभो ! आप मिलकर निबटा लेना।
आप में उन्हें भरोसा बहुत आप उनको समझा लेना ।। २६।।

अरे आपस की ही है बात आप उनका स्वभाव जाने।
आपकी वृत्ति-प्रवृत्ति सभी अरे वे भलीभाँति जाने।।
अरे है नहीं अपरिचित कोइ सभी जाने-पहिचाने हैं।
नहीं चिन्ता की कोई बात नहीं कोई अनजाने हैं ।। २७।।

भरत में कोई शंका नहीं परन्तु चक्ररत्न की बात।
मैं तो यही चाहता दूत! नहीं होवे कोई उत्पात।।
आप करते हैं कैसी बात किसी में ऐसा साहस नहीं।
आप दोनों होंगे इक साथ कोई कुछ भी कर सकता नहीं।। २८।।

आप तो चलें हमारे साथ कहीं कुछ होनेवाला नहीं।
कोई कुछ लेनेवाला नहीं कोई कुछ देनेवाला नहीं।।
अरे जो कुछ होना होगा जानते हैं सब कुछ ऋषभेश।
वही होगा वही होगा जानते हैं जो कुछ वृषभेश ।। २९।।

दूत ! तुम जाव भरत के पास भरत से सब कुछ कह देना।
अरे जो कुछ भी जैसा हुआ भरत से सही–सही कहना।।
पूज्यतम बड़े भाई श्री भरतराज को नमस्कार कहना।
और तुम विनयपूर्वक मर्यादा से सभी बात कहना।। ३०।।

अगर वे युद्धभूमि में बुला रहे तो हम भी आते हैं।
और पूरी सेना के साथ बन्धुवर हम आ जाते हैं।।
और जो कुछ भी होगा वहाँ अरे हम सभी समझ लेंगे।
अगर लड़ना होगा अनिवार्य बन्धु तो हम भी लड़ लेंगे।। ३१।।

दूत तो बाहुबलि को नमस्कार कर अवधपुरी को गया।
किन्तु श्री बाहुबलि युवराज हुये गम्भीर सोचने लगे।।
अरे रे लड़ लेने की बात दूत से मैंने कैसे कही।
और यह लड़ लेने की बात मेरे मन में कैसे आ गई। ३२।।

दूत ने ऐसा कुछ ना कहा कि जिसमें हो लड़ने की बात।
भरत ने आमन्त्रण भेजा खुशी में शामिल होने का।।
उन्होंने युद्धभूमि में नहीं, बुलाया अवधपुरी के द्वार।
अगर आती भी कोई बात, बात करके सुलझा लेते।। ३३।।

बात कर सभी समस्यायें सहज ही सुलझा लीं जातीं।
अरे आपस की बातें सभी स्वयं ही निबटा लीं जातीं।।
अरे भाई–भाई के बीच रहे भाई–भाई की बात।
अरे उत्तेजित होने की नहीं थी इसमें कोई बात।। ३४।।

अरे मैं तो उनका युवराज और वे मेरे राजा हैं।
आज तक आई न कोइ बात आज भी कैसे आवेगी।।
नहीं था कोई भी संकेत दूत की सविनय भाषा में।
दूत तो आग्रह करता रहा मेरे चलने की आशा में।। ३५।।

दूत ने जो भी सविनय कहा नहीं थी उसमें ऐसी बात।
कि जिसमें हो लडने की बात लगे कोई ऐसा आघात।।
व्यर्थ ही उत्तेजित मैं हुआ शान्त रहना ही सच्चा मार्ग।
नहीं है मुझको कोई विकल्प चित्त मेरा है इकदम साफ।। ३६।।

भाइ से लड़ने की यह बात मुझे अच्छी लगती ही नहीं।
भाइ तो मेरे प्रति अत्यन्त नेह से रहे लबालब सदा।।
अरे उनसे लड़ने का भाव मुझे कैसे आया जिनदेव।
एक क्षण आया सो आया नहीं है मुझे विकल्प विशेष।। ३७।।

चित्त में ना है कोई बात और ना है कोई आघात।
हृदय में है अपार स्नेह सदा आती है उनकी याद।।
मुझे तो है पूरा विश्वास सभी कुछ अच्छा ही होगा।
अभी तो चलते ही हैं वहाँ अरे जो होगा सो होगा।। ३८।।

अरे जो कहा कहा सो कहा और अब तो उसके अनुसार।
सभी कुछ करना होगा हमें स्वयं के वचनों के अनुसार।।
अरे 'लड़ना ही होगा हमें' – नहीं है ऐसी कोई बात।
किन्तु अब तो लड़ने के लिये हमें रहना होगा तैयार।। ३९।।

(दोहा)

कामदेव भुजबली ने, भेज दिया सन्देश।
तैयारी पूरी करो, दिया दिव्य आदेश।। ४०।।

–●–

भरत का अन्तर्द्वन्द्व
सातवाँ अध्याय

(दोहा)

अरे लौट के आ गया, चतुर दूत सानन्द।
सभी सुनाई भरत को, कुशल क्षेम आनन्द।। १।।

(रेखता)

दूत से बोले भरत नरेश सुनाओ कैसा था व्यवहार।
और कब कैसे क्या–क्या हुआ बताओ विगतवार सब बात।।
अहो वात्सल्यभाव से हमें बुलाया उनने अपने पास।
पूछने लगे भरत महाराज कुशल से तो हैं बारम्बार।। २ ।।

खुशी से भुजबलि कहने लगे हमें खुशियाँ हैं अपरम्पार।
अरे रे भरत हुये चक्रेश बधाई देते सौ–सौ बार।।
और इस अवसर पर सस्नेह मुझे भी याद किया भरतेश।
जानकर उनके मन के भाव हुआ मुझको आनन्द विशेष।। ३।।

अरे रे और आपके साथ समय जो बीता उसको याद।
अरे करते थे बारम्बार न उनको थी कोई फरियाद।।
अरे आने को थे तैयार और मिलने को आतुर थे।
आप जब राजमहल पहुँचें तभी आने को तत्पर थे।। ४।।

किन्तु जब मैंने बतलाया कि इकदम चक्ररत्न रुक गया।
और वह यही चाहता है कि भाइयों को आ जाने दो।।
और सब चलें एक ही साथअरे स्वागत हो सबका साथ।
और जब मैंने ऐसा कहा कि आप तो चलें हमारे साथ।। ५ ।।

एकदम उनको झटका लगा और वे मन में शंकित हुये।
और फिर उनने मुझसे कहा दूत तुम जाव भरत के पास।।
अगर वे युद्धभूमि में मुझे बुलाते हैं तो आता हूँ।
सभी सेना भी रहेगी साथ और मैं भी आ जाता हूँ।। ६ ।।

दूत ने जो कुछ भी है कहा नहीं उसमें कुछ भी प्रतिकूल।
कि उनके भाव और व्यवहार दिखाई देते हैं अनुकूल।।
किन्तु आ रहे फौज के साथ समझ में बात नहीं आई।
लड़ाई भी करनी होगी चित्त को बात नहीं भायी[१]।। ७ ।।

अरे वह स्वाभिमान का पिण्ड हारना उसने सीखा नहीं।
और वह सदा जीतता रहा अरे हम रहे जिताते उसे।।
और मैं देख नहीं सकता अरे रे उसे हारते हुये।
और वह कैसे देखेगा अरे रे मुझे हारते हुये।। ८।।

'भाई का भाई से लड़ना नहीं है कोई अनोखी बात।
भरत अर बाहुबलि भी लड़े' – अरे लड़ने वाले यह कहें।।
अरे मैं नहीं चाहता भाई जगत में हो ऐसा परिहास।
भाइयों के लड़ने का किन्तु नहीं बनने दूँगा इतिहास।। ९।।

१. भाना-पसन्द आना। यह बात मुझे पसन्द नहीं आई।

बाहुबलि से लड़ने की बात अरे मैं सोच नहीं सकता।
अधिक क्या और हारते हुये उसे मैं देख नहीं सकता।।
और लड़ने–मरने की बात किसी से मैं कर सकता नहीं।
मन्त्रि परिषद में करो विचार शान्ति सेक्या होसकता सही ?।। १०।।

बाहुबलि की मन्त्री परिषद बहुत ही आकुल–व्याकुल है।
भरत की सेना बड़ी विशाल विपुल शस्त्रों से सज्जित है।।
जीतकर भरतक्षेत्र सम्पूर्ण अयोध्या वापिस आई है।
अरे जब चक्ररत्न है साथ 'नहीं लड़ना' चतुराई है।। ११।।

अरे दोनों सेनाओं बीच नहीं तुलना हो सकती है।
अरे रे करो परस्पर बात युक्ति से कुछ करना होगा।।
अरे दो सेनायें क्यों लड़ें? व्यर्थ ही रक्तपात होगा।
अगर लड़ना ही हो अनिवार्य भाइयों को लड़ना होगा।। १२।।

मन्त्रि परिषद जब दोनों मिलीं तय हुआ दोनों भाई लड़ें।
अरे जलयुद्ध और मलयुद्ध[१] और बस नेत्रयुद्ध होवे।।
परस्पर रक्तपात से बचें नहीं होवे कोई नुकसान।
इसतरह चतुराई से भाई! अहिंसक रहे पूर्ण अभियान ।। १३।।

अरे दोनों पक्षों के मन्त्री भी तो नहीं चाहते थे।
कि दोनों भाई परस्पर लड़ें व्यर्थ ही मनमुटाव होवे।।
उक्त तीनों युद्धों के पीछे भी तो यही भावना थी।
अरे भाई भाई में बन्धु लड़ाई ना होवे तो ठीक।। १४।।

१. मल्लयुद्ध

आँख से आँख मिलेगी जब नेह उमड़ेगा अन्तर में।
और जल के छीटों से भी अरे माथा ठण्डा होगा।।
अरे जब मल्लयुद्ध के लिये गले से गले मिलेंगे वे।
फिर तो सभी समस्यायें सहज ही सुलझा लेंगे वे।। १५।।

इसी उत्कृष्ट भावना से उन्होंने यह सब नक्की किया।
अरे वे सभी जानते थे कि युद्ध से कुछ भी होगा नहीं।।
भाई का भाई से हो युद्ध अरे आदर्श नहीं यह बात।
अरे यह बात नहीं है ठीक लगेगा सबको ही आघात।। १६।।

अहिंसक थे दोनों ही पक्ष अहिंसा प्रेमी सभी समाज।
सभी का हित हो जिसमें निहित वही होता है अच्छा काज।।
इसलिये सबको अच्छा लगाऔर खुश थे दोनों ही पक्ष।
सभी को अन्तर से यह लगा हुआ है समाधान निष्पक्ष।। १७।।

मन्त्रि परिषद का यह प्रस्ताव भरत–बाहूबलि को स्वीकार।
हो गया सहजभाव से सहज किसी ने किया नहीं इन्कार।।
युद्ध टल गया ठीक ही हुआ यही था दोनों को ही इष्ट।
सभी को ऐसा अनुभव हुआ कि अब तो होगा नहीं अनिष्ट।। १८।।

बाहुबलि के थे वार्ताकार कूटनीती के अति मर्मज्ञ।
भरत की मूल शक्ति सेना सबल थी चक्ररत्न के साथ।।
उसे कर दूर शक्ति से हीन किये थे उनने भरत नरेश।
युद्ध को बना दिया था खेल निहत्थे किये भरत चक्रेश।। १९।।

यद्यपी भरत जानते थे और सब समझ रहे थे खेल।
फिर भी किया सहज स्वीकार उन्हें भी इष्ट नहीं था युद्ध।।
हराना नहीं चाहते थे हारना भी तो क्यों चाहें?।
तो इसका यही अर्थ है साफ कि लड़ना नहीं चाहते थे।।२०।।

भरतजी के मन की यह बात कोई भी नहीं जानता था।
कि उनको हार-जीत की बात भाई से नहीं सुहाती है।।
व्यर्थ ही खेल-खेल में लड़ें व्यर्थ का नाटक करते फिरें।
किसी से हारें अथवा अरे किसी को व्यर्थ हराते फिरें।। २१।।

भरतजी यही चाहते थे कि भाई-भाई मिलकर रहें।
स्वयं के नहीं जगत के भी सभी भाई मिलजुलकर रहें।।
हमारे बारे में सब लोग 'नहीं लड़ने' की चर्चा करें।
और कुछ सीखें ना सीखें सदा मिलकर रहना सीखें। २२।।

आई जब तीन युद्ध की बात बाहुबलि होकर के तैयार।
अखाड़े में आ पहुँचे शीघ्र और थे लड़ने को तैयार।।
भरतजी वैसे ही आये कि जैसे आये हों दरबार।
अमात्यों ने उनको देखा तो कुछ भी समझ नहीं पाये।। २३।।

आप तो ऐसे ही आ गये आप तो हुये नहीं तैयार।
मुझे भाई से लड़ना नहीं इसलिये हुआ नहीं तैयार।।
अरे रे अवधपुरी में चक्र जीत के बिन जावेगा नहीं।
अरे कब क्या कैसे होगा समझ में आता है कुछ नहीं।। २४।।

केवली ने जब जैसा जो अरे देखा जाना होगा।
वही होगा वही होगा समझना हमें यही होगा।।
अरे कुछ भी चिन्ता मत करो चलो हम भी तो चलते हैं।
और जो कुछ जैसा होगा वहीं पर चलकर देखेंगे।। २५।।

अरे कुछ भी चिन्ता मत करो सभी कुछ अच्छा ही होगा।
हमें तो वही सहज स्वीकार जो होना होगा सो होगा।।
चक्र को जो कुछ करना हो जहाँ आना–जाना हो जाय।
कहीं भी आना-जाना नहीं अरे हम तो अपने में जाँय ।। २६।।

अरे हम चलते हैं तुम चलो और भुजबलि का स्वागत करें।
करें कुछ मीठी–मीठी बात प्रेम से आलिंगन हम करें।।
गले से गले मिलें दोनों और सुख–दुख की बातें करें।
मुझे लड़ने में रस कुछ नहीं और कुछ दिन हिलमिलकर रहें।। २७।।

बाहुबलि ! आओ आओ पास वहाँ ऐसे कैसे तुम खड़े ?।
अरे तुम मेरे छोटे भाइ और हम हैं तुमसे कुछ बड़े।।
अरे तुम छोड़ो सभी विकल्प हमें तुमसे लड़ना है नहीं।
हमें तुमसे है अतिशय प्रेम व्यर्थ में हमें झगड़ना नहीं।। २८।।

आपका जीवन हम जानें आपके मन को पहिचानें।
आपमें हमको शंका नहीं और आशंका कुछ भी नहीं।।
किन्तु यह चक्ररत्न की बात अरे सारी दुनियाँ जाने।
और इसकी जो अद्भुत जिद्द उसे भी सारा जग जानें।। २९।।

अरे हम चक्ररत्न के लिये भाइयों से लड़ सकते नहीं।
किसी की सम्पत्ति के लिये किसी का वध्कर सकते नहीं।।
हमारा अवधपुरी आवास कि जिसमें वध होता ही नहीं।
अवध के वासी हैं हम लोग जहाँ पर हिंसा होती नहीं।। ३०।।

जहाँ न वध का कोई काम जहाँ न वध का नाम निशान।
जहाँ है वध का पूर्ण निषेध वही है अवधपुरी का धाम।।
एक भी राजा का वध नहीं हुआ दिग्विजय यात्रा में।
इसलिये अभी अयोध्या को सभी जन अवधपुरी कहते ।। ३१।।

भाइ तुम हमें हराये बिना चक्रवर्ती बन सकते नहीं।
और हम तुम्हें हारते हुये कभी भी देख नहीं सकते।।
आज तक मेरे प्रियतम अनुज! जीतते ही देखा है तुम्हें।
आज भी जीतोगे हे अनुज! नहीं आशंका कोई हमें।। ३२।।

अरे स्वीकृत करने के पूर्व हम यह बात जानते थे।
तुम्हीं जीतोगे तीनों युद्ध क्योंकि तुम मुझसे लम्बे हो।।
अरे अब लड़ने की क्या बात हार मैं करता हूँ स्वीकार।
तुम्हारी जीत मुझे स्वीकार तुम्हारी जीत मुझे स्वीकार ।। ३३।।

अरे रे चक्ररत्न तुम जाव जाव मेरे भाई के पास।
सदा उनकी सेवा में रहो और उनको करने दो राज।।
किन्तु वह चक्ररत्न अड़ गया नहीं जाने को था तैयार।
भरत ने धक्का देकर कहा जाव तुम जावो उनके पास।। ३४।।

चक्र फिर धीरे–धीरे गया पहुँचकर बाहुबलि के पास।
और अत्यन्त विनय से झुका अरे उनके चरणों के पास।।
प्रदक्षिणा दे देकर के तीन रुक गया था वह उनके पास।
अनुज बाहुबलि ने तब कहा अरे तुम जाव भरत के पास।। ३५।।

अरे वह चक्ररत्न आ गया पुनः श्री भरतराज के हाथ।
अनुज भुजबली खड़े थे पास जुड़े थे उनके दोनों हाथ।।
दोनों बन्धु हो गये एक उपस्थित था सम्पूर्ण समाज।
गले से गले मिले थे बन्धु अनोखा था उनका अन्दाज।। ३६।।

इसी को कहते हैं कुछ लोग भरत ने चक्र चलाया था।
कुटुम्बीजन पर चलता नहीं इसलिये ना चल पाया था।।
जब यह बात जानते सभी, भरत इतना न जानते थे?
अरे यह बात व्यर्थ अपवाद सभी यह बात जानते थे।। ३७।।

अनुज तुम सबप्रकार से योग्य सम्भालो छहखण्डों का राज।
जाकर ऋषभदेव के पास मैं लूँगा दिव्यध्वनि का लाभ।।
अभी तक इसमें उलझा रहा नहीं ले पाया ध्वनि का लाभ।
किन्तु अब जागा है सद्भाग्य मुझे लेने दो उसका लाभ।। ३८।।

मैं रहा तरसता बन्धु दिव्यध्वनि को सुनने के लिये।
आपने लिया लाभ भरपूर और मैं भरतक्षेत्र के लिये।।
घूमता रहा भटकता रहा किया ना कुछ भी अपने लिये।
मिला है मुझको मौका आज सहज ही अरे स्वयं के लिये।। ३९।।

अरे मैं ऋषभदेव के पास निराकुल होकर कुछ दिन रहूँ।
और गहराई से हे भाइ! दिव्यध्वनि का आलोड़न करूँ।।
अरे भरपूर चिन्तवन करूँ निरन्तर मन्थन करता रहूँ।
स्वयं का ज्ञान–ध्यान–श्रद्धान निरन्तर ही मैं करता रहूँ।। ४०।।

आपने मुझको अवसर दिया बन्धु उपकार मानता हूँ।
आपने इस झंझट से किया मुक्त आभार मानता हूँ।।
अरे मैं उलझ गया था बन्धु आपने मुझे उबारा है।
सम्भालो यह पूरा साम्राज्य आपका ही यह सारा है।। ४१।।

अरे मैंने मानी है हार चक्र अब मेरा कैसे रहा?।
और जीता है मेरा भाई चक्र तो घर का घर में रहा।।
मुझे खुशियाँ हैं अपरम्पार अरे जीता है मेरा भाई।
मुझे है परमानन्द अपार मिलेगा दिव्यध्वनि का लाभ।। ४२।।

अरे यह हो सकता है नहीं आपने जीते हैं छह खण्ड।
सभी राजाओं ने महाराज आपको ही स्वीकारा है।।
सभी ने बहिन–बेटियाँ भी आपको ही अर्पित की हैं।
और यह चक्ररत्न का पुण्य आपके ही पल्ले में है।।४३।।

सभी बिखरे–बिखरे थे राज्य आपने किया सभी को एक।
अरे सबके विकास की बात आपने समझाई सबको।।
अरे मिलकर चलने की बात आपने ही समझाई है।
और मिलकर चलने की राह आपने ही दिखलाई है।। ४४।।

अरे अब भाई अधर में छोड़ आप कैसे जा सकते हैं?
और ये मुकुटबद्ध राजा आपको कैसे छोड़ेंगे?।।
आपको ही संभालना है अरे यह छह खण्डों का राज्य।
आपमें ऐसी क्षमता है संभाले जो विशाल साम्राज्य।।४५।।

भाई ! अब इसे अधूरा छोड़ कहीं भी जा सकते हो नहीं।
क्योंकि इसके विकास की बात आपके ही माथे में है।।
अरे इन छह खण्डों को भाई व्यवस्थित कैसे क्या करना।
एकदम सही योजनायें आपके ही दिमाग में हैं।।४६।।

आपकी गहराई की थाह कोइ भी नाप नहीं सकता।
आपकी महिमा अपरंपार आप हैं अति उदार भाई!।।
भाई ! मैं समझ नहीं पाया आपकी इस उदारता को।
अरे मैं पहुँच नहीं पाया आपकी इस महानता को।।४७।।

यद्यपी आप बड़े हैं किन्तु बड़प्पन जान नहीं पाया।
और अन्तरतम के वात्सल्य भाव का ध्यान नहीं आया।।
अरे गम्भीर हृदय की गहराई की थाह नहीं पाया।
अरे रे भाइ! आपकी गरिमा को पहिचान नहीं पाया।।४८।।

कहूँ क्या बिना लड़े ही अरे जीतने और जिताने की।
आपकी यह अद्भुत है कला अरे सर्वस्व लुटाने की।।
आप छह खण्डों से कितने विरक्त यह बात जानने की।
अरे हम में थी क्षमता नहीं बन्धुवर तुम्हें जानने की।।४९।।

अरे इन्द्रिय विषयों में लिप्त भरत हैं छह खण्डों में रक्त।
जगत के लोग समझते रहे आप तो इकदम रहे विरक्त।।
अगर यह घटना घटती नहीं तो हम भी जान नहीं पाते।
'भरतजी घर में वैरागी' मरम यह जान नहीं पाते ।।५०।।

भरतजी कर दो हमको माफ आपको संकट में डाला।
आप तो थे अपने में मगन व्यर्थ ही हमने उलझाया।।
बन्धु हम कुछ कर सकते नहीं आपको जो–जो करना हो।
वह सब निधड़क होकर करें आपको जो भी करना हो।।५१।।

मुझे इसमें कुछ भी रस नहीं मुझे तो अपने में जाना।
अरे रे निज आतम को छोड़ मुझे तो कहीं नहीं जाना।।
मुझे निज आतम में जमना मुझे निज आतम में रमना।
स्वयं में स्वयं समा जाना मुझे कुछ और नहीं करना।।५२।।

दु:ख का घर असार संसार मुझे ना रंच सुहाता है।
अरे मैं अभी छोड़ दूँ इसे मेरे मन में यह आता है।।
जगत का ऐसा अद्भुत रूप देख मैं यही सोचता हूँ।
मुझे अब इसमें रहना नहीं अरे अन्तरमुख होता हूँ।।५३।।

आप तो अनुमति करें प्रदान मुझे कुछ नहीं चाहिये और।
करो न अनुमति की कोइ बात और जो चाहो सो ले लो।।
अरे रे मेरे प्रियतम बन्धु! न तुम मुझसे मुखड़ा मोड़ो।
और क्या अधिक कहूँ हे बन्धु! मुझे न इसप्रकार छोड़ो।। ५४।।

आ गई वही सामने बात कि जिसकी मुझको शंका थी।
आप भी दीक्षा न ले लें यही मुझको आशंका थी।।
आपके बिना आपका राज अरे मुझसे सम्भलेगा नहीं।
आपके बिना अकेले बन्धु ! अरे मुझसे कुछ होगा नहीं।।५५।।

भरतजी बहुत मनाते रहे किन्तु बाहुबलिजी ना रुके।
वे तो गये, गये सो गये रोकने पर भी वे न रुके।।
भरतजी पीछे-पीछे गये उन्होंने मुडकर देखा नहीं।
अरे वे गहरे वन में गये, गये सो गये, गये सो गये।। ५६।।

भरतजी खड़े सोचते रहे और वे तो आगे बढ़ गये।
अरे रे नग्न दिगम्बर होकर वे तो अपने में चढ़ गये।।
वे तो छठे-सातवें गुणस्थान में आते-जाते रहे।
और वे महातपस्वी महाव्रती निश्चल होकर थे खड़े ।। ५७।।

अगर ना होता यह दुष्चक्र[१] भाइयों से लड़ने की बात।
सामने ही ना आती बन्धु! और ना होता यह उत्पात।।
प्रेम से रहते सारे भाई और ना होता यह आघात।
लेता दिव्यध्वनि का लाभ सहज ही मिलकर सबके साथ।।५८।।

भरतजी इकदम हुये उदास भाई को इसप्रकार खोकर।
लौटकर धीरे-धीरे चले अरे वे अवधपुरी की ओर।।
चक्र तो शान्त हो गया किन्तु भरतजी अन्तर से हिल गये।
भाइयों को खोकर भरतेश सैन्यदल में आकर मिल गये ।। ५९।।

१. भरतजी यहाँ चक्र को दुष्चक्र कह रहे हैं। दुष्चक्र अर्थात् दुष्ट चक्र।

भाइयों के वियोग में दुखी किसी से कुछ भी बोले नहीं।
मन्द स्वर में धीरे से कहा चलो अब अवधपुरी को चलें।।
सभी थे चलने को तैयार और सब धीरे-धीरे चले।
सभी सेना भी चलने लगी सभी जन अब चलते ही गये।। ६०।।

अरे गाजे-बाजे के साथ नाचते-गाते सभी प्रकार।
और भारी उछाह के साथ सभी लोगों ने सभी प्रकार।।
सभी को पहिनाये थे हार दिये थे विध-विध के उपहार।
अयोध्यावासी लोगों ने किया था स्वागत विविध प्रकार।। ६१।।

यद्यपि अन्तर में गमगीन परन्तु बाह्य सभी व्यवहार।
और वे निभा रहे थे सहज भाव से सभी सहज व्यवहार।।
भरतजी अन्तर-आतम लीन निरन्तर अपने में ही मगन।
अरे रे अन्तर में ही लगी हुई थी उनकी पूरी लगन।। ६२।।

भरत की छह खण्डों की जीत नहीं थी साधारण घटना।
और यह परम-अहिंसक जीत जगत की थी अद्भुत घटना।।
भरत के लिये लोक में अरे महा मंगलमय अवसर था।
किन्तु जो घटा था घटना चक्र भरत के अन्तर को मथ गया।।६३।।

भरत ना रो ही सकते थे भरत ना हँस ही सकते थे।
इस समय रो करके अपशकुन नहीं कर सकते थे भरतेश।।
बाहुबली से असीम स्नेह और उनका ऐसे जाना।
उन्हें ना हँसने ही देता और ना रोने देता था।। ६४।।

जीत का था विशाल उत्सव और उसमें शामिल होना।
भरत को था इकदम अनिवार्य और था अति आवश्यक कार्य।।
सभी जन नाच-नाच करके बधाई देने आते थे।
विनय से झुक-झुककर सब लोग बधाई देते जाते थे।। ६५।।

बधाई स्वीकृत करते समय वदन पर मन्द-मन्द मुस्कान।
और स्मित मुद्रा के साथ सभी का करना है आह्वान।।
अरे रे उचित भेंट के साथ सभी का यथायोग्य सन्मान।
सभी लेकर जावें सद्भाव सभी को देना है सन्मान।। ६६।।

भरत के अन्तर में था द्वन्द चक्र का यह महान उत्सव।
प्राण से प्यारे भाई का इसतरह जंगल में जाना।।
न हँसना-रोना कुछ भी बने और अन्तर में आतमराम।
इसतरह उलझा उनका चित्त किन्तु वे थे परिपूरण शान्त।।६७।।

अरे वे आकुल-व्याकुल नहीं निराकुल थे अपने में शान्त।
चित्त में उठें विकल्प अनन्त नहीं थे वे उनसे आक्रान्त।।
विजय के वैभव का आनन्द बन्धु की याद एक ही साथ।
चित्त में दुविधा पैदा करे किन्तु वे थे दुविधा से पार।। ६८।।

यद्यपि अन्तर में वे अन्तरात्मा रहते आतम लीन।
तथापि बाहर में वे सभी काम में परिपूरण परवीन।।
और जाग्रत रहते वे सदा सहज पर यथासमय सोते।
कि उनके सहजभाव से सभी काम नित यथासमय होते।। ६९।।

ज्ञानियों का जीवन तो सदा बन्धुवर! इसप्रकार रहता।
किन्तु उनके अन्तर में बन्धु! निरन्तर आतम ही रहता।।
यद्यपि योग्य सभी व्यवहार जगत के यथायोग्य चलते।
तदपि वे अंतरंग से सदा निरन्तर अपने में रहते।। ७०।।

और ये शुद्ध शुभाशुभभाव निरन्तर होते रहते हैं।
अरे चौथे गुणथानक में सदा ऐसा ही होता है।।
कभी आतम को भूलें नहीं और दुनियादारी भी तो।
जगत के जीवों के भी साथ निरन्तर चलती रहती है।। ७१।।

भरत की अन्तर परिणति को अरे मैं बता नहीं सकता।
चक्रवर्ती के वैभव को अरे मैं गिना नहीं सकता।।
और बाहूबलि का वैराग्य आपको कैसे बतलाऊँ ?।
मैं तो दोनों का ही भगत आपको कैसे समझाऊँ ?।। ७२।।

अरे दोनों व्यक्तित्व महान जगत के श्रेष्ठ महामानव।
और उनकी गौरव गाथा अरे मैं जीवन भर गाऊँ।।
अरे दोनों हि महामानव इसी भव से होंगे भवपार।
भव का भाव नहीं उनमें कि उनका शेष नहीं संसार।। ७३।।

यद्यपि भव में दिखते अभी तथापि वे हैं भव से पार।
जानते हैं वे दोनों भाइ नहीं है इसमें कोई सार।।
यहाँ 'मैं-मैं' का झगड़ा नहीं यहाँ तो 'तुम-तुम' की है बात।
अरे यह राज सम्भालो तुम्हीं अरे दोनों कहते यह बात।। ७४।।

राज से कोई चिपटा नहीं छोड़ने को दोनों तैयार।
'सभी कुछ निश्चित है' – यह बात मानने को दोनों तैयार।।
भाग्य से अधिक समय के पूर्व किसी को कुछ भी मिलता नहीं।
अरे जिसको जो कुछ जब जहाँ अरे मिलना हो मिलता वही।।७५।।

काललब्धी बाहुबली की अरे अन्तर्मुख होने की।
और घर बार छोड़कर सभी अरे दीक्षा लेने की अभी।।
काललब्धि आई हो भाई! बताओ कौन टाल सकता।
अगर ना आई हो तो भाई बताओ कौन बुला सकता।। ७६।।

भरत की काललब्धि थी अभी अरे चौथे गुणथानक की।
गृहस्थी में रहने की तथा चक्रवर्ती बनने की थी।।
और था भरत क्षेत्र का भाग्य भरत सा नायक पाने का।
सभी कुछ निश्चित ही था ऋषभ केवली ने भी जाना था।।७७।।

भाइ–भाई निबटा लेते बड़ी से बड़ी बात भाई !।
यही सब बतलाती यह कथा और कुछ नहीं बात भाई !।।
'भाईयों से भाई लड़ते' नहीं है इसका यह इतिहास।
शान्ति से होते कैसे काम यहाँ तो है इसका इतिहास।। ७८।।

यदि कुछ तुम्हें सीखना है कथा से तुम सीखो यह बात।
'लड़ना' नहीं सीखना तुम्हें 'नहीं लड़ना' सीखो हे भाई !।।
अरे लड़ना तो जानें सभी 'नहीं लड़ना' ही सीखना है।
उलझना नहीं सीखना है सुलझना हमें सीखना है।। ७९।।

सुलझना ही है मुक्तिमार्ग उलझना तो है जग–जंजाल।
जगत की उलझन को कर दूर काट दो तुम जग का जंजाल।।
चाहते हो तुम आतम शान्ति आतमा को अपना लो भाई !।
आतमा में जम जावो भाई ! आतमा में रम जावो भाई !।।८०।।

आतमा ही है अपना एक परम मंगल उत्तम अर शरण।
अपन में अपनेपन के साथ अपन में ही अपना आचरण।।
धर्म है एकमात्र कर्तव्य यही है रतनत्रय का रूप।
यही है असली आतमधर्म आतमा का है शुद्धस्वरूप।। ८१।।

आतमा का जो शुद्धस्वरूप उसे तुम जानो पहिचानो।
उसी में अपनेपन के साथ उसी को निजस्वरूप जानो।।
उसी में हो जाओ तल्लीन उसी में हो जाओ लवलीन।
यही तो परम धरम है बन्धु ! यही है सच्चा मुक्तिमार्ग।।८२।।

यही है सच्चा मुक्तिमार्ग इसी से प्राप्त करोगे मुक्ति।
अन्य मारग है कोई नहीं एक यह ही है सच्ची युक्ति।।
इसी से मिलता परमानन्द अरे आनन्द और आनन्द।
अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द।।८३।।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ, भरत विजय अभियान।
अवधपुरी में आ गया, चक्ररत्न का यान।। ८४।।
बाहुबलि जिनराज के, दर्शन के शुभभाव।
मन में जागे भरत के, थुति करने के भाव।।८५।।

–●–

भरत का अन्तर्द्वन्द्व

आठवाँ अध्याय

(दोहा)

बाहुबलि मुनिराज ने, धारा प्रतिमा योग।
एक वर्ष के लिए ही, मिला सहज संयोग।।१।।

(रेखता)

अरे श्री बाहुबलि को खड़े-खड़े ही एक वर्ष हो गया।
उस समय तरह-तरह के जीव-जन्तु भी तन पर चढ़ते रहे।।
और वर्षा ऋतु में भी विध-विध बेलें उनके तन पर चढ़ीं।
परन्तु उनको डिगा न पाईं थीं विपदायें बड़ीं-बड़ीं ।। २ ।।

और वे विपदाओं के बीच खड़े सो खड़े-खड़े ही रहे।
यद्यपि आते-जाते रहे शुद्ध से शुभ में शुभ से शुद्ध।।
अरे शुद्धोपयोग में लगातार अन्तर्मुहूर्त तक वे।
अरे रे एक बरस रह सके नहीं सर्वज्ञ नहीं बन सके।। ३।।

अरे वे एक बरस के बाद ध्यान में गये, गये सो गये।
और शुद्धोपयोग में लीन हुये सो हुये, हुये ही रहे।।
और केवलज्ञानी हो गये साथ में नन्त सुखी हो गये।
भरतजी दर्शनार्थ आये विविधविध स्तुति करने लगे ।। ४।।

यद्यपि पूज्य पिताश्री ऋषभदेव को सहस्त्र वर्ष लग गये।
तथापि प्रभो! आप तो एक बरस में ही केवलि हो गये।।
आप तो पौरुष के हैं पिण्ड आपकी महिमा अपरम्पार।
आपकी महिमा अपरम्पार आपको नमस्कार शतबार ।। ५ ।।

आपको नमस्कार शतबार आपको वन्दन शत शत बार।
अरे हे जिनवर बाहूबली आपको वन्दन बारम्बार।।
आपके मारग पर हे प्रभो! हमें भी आना है अतिशीघ्र।
अरे इस भवसागर का पार हमें भी पाना है अतिशीघ्र।। ६ ।।

आपका समय आ गया था और थी होनहार ऐसी।
और पौरुष भी जागा प्रभो! निमित भी यथासमय हाजिर।
सभी कुछ निश्चित ही था प्रभो! पिताश्री सभी जानते थे।
सभी कुछ सहज हो गया प्रभो! और हम यही मानते थे।।७ ।।

हमारा भी स्वभाव तो नाथ! आपके जैसा ही है प्रभो !।
हमारी होनहार भी नाथ! आपके जैसी ही हो विभो !।।
हमारा काल शीघ्र आवे और पुरुषार्थ जगे जल्दी।
हमारा काल नहीं आया इसलिये घर में उलझे रहे ।। ८।।

हम सब भले भावना करें काम तो सब स्वकाल में हों।
और पुरुषार्थ जगेगा तभी अरे जब काललब्धि आवे।।
अभी तो उलझे रहने की हमारी काललब्धि है प्रभो !।
और यह होनहार भी अभी हमारी ऐसी ही है प्रभो !।। ९।।

यद्यपि हमने रोका बहुत आप कैसे रुक सकते थे ?।
आपके दीक्षा लेने की काललब्धि आ पहुँची थी।।
आपको एक वर्ष में ही प्रभो! होना था केवलज्ञान।
आप कैसे रुक सकते थे? काल है स्वयं बहुत बलवान ।।१०।।

यद्यपि यह सब घटनाचक्र ऋषभ भगवान जानते थे।
किन्तु वे पूर्ण वीतरागी उन्हें कोई विकल्प ना था।।
और कुछ बतलाने का भाव नहीं उनके अन्तर में था।
मात्र ज्ञाता-दृष्टा का भाव उन्हें तो नित्य वर्तता था।।११।।

जगत में जो कुछ होना हो उन्हें कोई विकल्प ना है।
यद्यपि सभी जानते किन्तु प्रभु को कुछ विकल्प ना है।।
प्रभु हैं परम वीतरागी सहज ज्ञाता-दृष्टा भी हैं।
और हैं अपने में ही मगन जगत से कुछ भी रिश्ता नहीं।।१२।।

यद्यपी जाने-देखें सभी प्रभावित रंचमात्र ना हों।
सहज ही ज्ञाता-दृष्टा रहें प्रभावित हुये बिना जानें।।
प्रभावित होकर ना जानें अप्रभावित रहकर जानें।
जानना कभी बन्द ना हो उसे केवलज्ञानी कहते।। १३।।

जानने का विकल्प ना हो जानना सहजरूप से हो।
सभी द्रव्यों को वे जानें और उनके सब गुण जानें।।
सभी पर्यायों को जानें जानना कभी बन्द ना हो।
सभी को सदा जानते रहें स्वयं को जानें पहिचानें।।१४।।

स्वयं को जानें पहिचानें स्वयं में ही अपनापन रखें।
स्वयं में जमे-रमे नित रहें स्वयं में स्वयं समाये रहें।।
उन्हें ही कहते हैं सर्वज्ञ-वीतरागी जिनेन्द्र भगवान।
प्रभो हे बाहुबलि! हो गये आप ऐसे जिनेन्द्र भगवान।।१५।।

आज तुम मेरे भाई नहीं आज तो हो मेरे भगवान।
प्रभो ! मैं आराधक साधक और तुम हो मेरे आराध्य।।
वीतरागी–सर्वज्ञ जिनेश ! अरे तुम साधन हो ना साध्य।
और तुम परमपूज्य भगवान और मैं भक्त तुम्हारा नाथ।।१६।।

आपको जो पाना था प्रभो! आपने पाया है वह आज।
और मैं अभी भटक ही रहा मुझे वह पाना है जिनराज!।।
आप बन गये आज भगवान और मैं हूँ कल का भगवान।
अरे यह तो पर्यय की बात द्रव्य से तो हम सब भगवान।।१७।।

आपके बारे में हे नाथ! जगतजन विविध कल्पना करें।
आपको कर्त्ता–धर्त्ता कहें आपसे विविध याचना करें।।
जगत के कर्त्ता–धर्त्ता नहीं आप कुछ लेते–देते नहीं।
आप तो ज्ञाता–दृष्टा प्रभो आपको वे पहिचानें नहीं।। १८।।

आप तो जाना–देखा करें आप कुछ करते–धरते नहीं।
आप तो अपने में तल्लीन आप पर में कुछ करते नहीं।।
आप कुछ भी चेष्टा ना करें आप कुछ भी ना बोलें बोल।
आप तो कुछ भी सोचें नहीं आप अपने में रहेंअडोल।। १९।।

आप बतलाते हैं जग को स्वयं को जानो उसमें जमो।
स्वयं में ही अनन्त सुख है इसलिये स्वयं स्वयं में रमो।।
स्वयं को जानो, जानो नहीं; जानना होने दो तुम सहज।
जानने का तनाव मत करो जानना होने दो तुम सहज।। २०।।

अरे करने–धरने का बोझ उतारो हो जावो तुम सहज।
जानने के तनाव से रहित जानना होने दो तुम सहज।।
जानना होने दो तुम सहज जानने के विकल्प से पार।
और तुम हो जावो निर्भार भाड़ में जाने दो तुम भार।। २१।।

भाड़ में जाने दो तुम भार करो तुम अपने में निर्धार।
अगर बनना चाहो भगवान उन्हीं–से हो जावो निर्भार।।
उन्हीं–से हो जावो निर्भार उन्हीं–से हो जावो निर्ग्रन्थ।
चाहते हो तुम भव का अन्त शीघ्र ही छोड़ो जग का पन्थ।।२२।।

सहजता जीवन का आनन्द यही है परमागम का पन्थ।
चलो तुम परमागम केपन्थ शीघ्र आवेगा भव का अन्त।।
शीघ्र आवेगा भव का अन्त प्रगट होगा आनन्द अनन्त।
ज्ञान–दर्शन भी होंगे नन्त वीर्य भी होगा अरे अनन्त।। २३।।

अनन्तानन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द।
अनन्तानन्द अनन्तानन्द अरे भोगोगे काल अनन्त।।
प्रभो हे बाहूबली जिनेश! आपने जग को समझाया।
आपका यही दिव्य उपदेश मुझे भी अन्तर से भाया।। २४।।

भरतजी कहने लगे जिनेश ! मुझे तो यही समझ आया।
घटा है जो यह घटनाचक्र सभी कुछ पूर्व सुनिश्चित था।
और हम सब उसके अनुसार प्रकृति से ही संचालित थे।
सहज जो कुछ होना था नाथ! वही सब सहजभाव से हुआ।। २५।।

और अब आगे जो होगा अरे वह सब भी नक्की है।
अरे इसमें कुछ संशय नहीं बात तो इकदम पक्की है।।
अत: कुछ भी विकल्प करना स्वयं ही व्यर्थ उलझना है।
हमें उलझन में पड़ना नहीं हमें तो सहज सुलझना है।।२६।।

यद्यपि राज-काज के कामों में मेरा मन लगता नहीं।
तदपि मैं जबतक घर में हूँ तबतलक करने ही होंगे।।
अरे कुछ लाभ नहीं भगवन अधिक आकुलता करने से।
अरे सब काम समय पर सहज भाव से यथायोग्य होंगे।।२७।।

अरे जल्दी करने की बात समझ में मुझको आती नहीं।
क्योंकि सब काम समय पर ही अरे होते रहते हैं सदा।।
व्यर्थ की आकुलता क्यों करें समय के पहले होगा नहीं।
समय पर ही होंगे सब काम बात यह जिनवर ने है कही।। २८।।

(विष्णु)[१]

भरतक्षेत्र में कर्मभूमि की सभी व्यवस्थायें।
यथासमय सब यथायोग्य सब होती रहती हैं।।
सहजभाव से कुछ विकल्प नित आते रहते हैं।
पर विकास के काम सहज ही होते रहते हैं।। २९।।

जब होते हैं सहज स्वयं ही यथासमय सब काज।
सहजभाव से सहज चल रही सारी दुनियाँ आज।।
अन्तरतम की कमजोरी से यह विकल्प का जाल।
अन्तर में उठ रहा निरन्तर इसका यह जंजाल।। ३०।।

१. कहाँ गये चक्री जिन जीता...... की लय पर गायें।

इसका यह जंजाल रूप धर लेता है विकराल।
कुछ भी होता नहींजाल हो कितना ही विकराल।।
सबकुछ होता अवश स्ववश में कुछ भी होता नहीं।
सहजभाव से सहज रहें तो कुछ हो सकता नहीं।।३१।।

इसे सहज स्वीकार करें श्रद्धा-भक्ति के साथ।
अर इसके ही अनुसार चलें खोजें ना कोई साथ।।
अरे साथ का मार्ग नहीं इसमें तो अकेले ही।
चलना होगा हमें कहें यह बात जिनेश्वर जी।।३२।।

आप चले श्री बाहुबली! हमको भी चलना है।
आज नहीं तो कल ऐसा ही मार्ग पकड़ना है।।
इसमें ही है सार कहीं भी सार नहीं दिखता।
भव में भटकन बहुत कहीं भव पार नहीं दिखता।।३३।।

(रेखता)

आज तो मैं उलझा हूँ बहुत अरे कुछ भी कह सकता नहीं ।
समस्यायें समस्यायें निरन्तर आती रहती हैं।।
उन्हीं में उलझा रहता हूँ समय यों ही जाता रहता ।
आतमा के हित चिन्तन में निरन्तर बाधा पढती है।।३४।।

अरे मैं दो पाटों के बीच निरन्तर पिसता रहता हूँ।
कभी अन्तर में जाता हूँ, कभी बाहर आ जाता हूँ।।
अरे अन्तर बाहर में आना जाना सदा लगा रहता ।
अरे अगणित विकल्प भी नाथ! सदा आते-जाते रहते।। ३५।।

अरे मैं तो इस विचलित परिणति का बस ज्ञाता-दृष्टा हूँ।
अरे जो सहजभाव से होता है मैं उसे जानता हूँ।।
अरे कर्त्ता-धर्त्ता मैं नहीं नाथ! मैं जाननहारा हूँ।
अरे मैं तो हूँ सबसे भिन्न निराला देखनहारा हूँ।। ३६।।

अरे है श्रद्धा सिद्धों के समान पर परिणति मैली है।
अरे हे नाथ! भूमिका जैसी हो परिणति भी वैसी हो।।
अरे वह होगी तो होगी न उसमें कुछ अदला-बदली।
कभी भी हो सकती है नहीं जिनेश्वर बात आपकी है।।३७।।

जिनेश्वर बात आपकी है अरे वस्तुस्वरूप की है।
व इसकी सहज स्वीकृति ही अरे सच्चा पुरुषारथ है।।
अरे इसका ही सम्यग्ज्ञान जिनेश्वर मुक्ति का मग है।
और इसके ही तो अनुसार परिणमन होता सम्यक् है।। ३८।।

एक आतम में ही चित रमे और चित में नित आतम रहे।
और भगवान आतमा के विकल्प नित मन में उठते रहें।।
अरे आतम में अपनापन ज्ञान-श्रद्धा में नितप्रति रहे।
और मेरा यह चंचल चित्त सदा इक आतम में ही रहे।।३९।।

भूमिका के अनुरूप विकल्प होंय तो उनको रोके कौन?।
रोकने का विकल्प भी उठे यदि उनको भी रोके कौन?।।
अरे अनुसार भूमिका के हमें आते हैं जो भी भाव।
ज्ञान के ज्ञेय बना लेते सहज ही सब प्रकार के भाव।।४०।।

यद्यपी एक आतमा ही हमारे लिये निरन्तर मुख्य।
तथापि ये विकल्प के जाल कभी भी हो जाते हैं मुख्य।।
सहज स्वीकृति ही तो है अरे लोक में एक मात्र सन्मार्ग।
प्रभो ! श्रीबाहुबलीजी ! इसे छोड़ हैं और सभी उन्मार्ग।। ४१।।

सहजता जीवन का आदर्श सहजता ही जीवन की जान।
सहज जीवन ही जीवनऔर सहजता में जीवन आसान।।
अरे ज्ञानी का जीवन सहज सहजता ही उनकी गरिमा।
सहजता में ही संयम है सहजता ही उनकी महिमा।।४२।।

ज्ञानियों का गृहस्थ जीवन अरे होता है दुधारु धार।
रे श्रद्धा निर्विकल्प रहती विकल्पों का अपार व्यापार।।
निरन्तर चलता रहता है इसे ही कहते हैं व्यवहार।
सन्तुलन कभी बिगड़ता नहीं नाव रहती है नित मझधार।।४३।।

नाव रहती नित पानी में नाव में पानी रहता नहीं।
नाव में पानी रहता नहीं इसलिये नाव डूबती नहीं।।
अगर पानी अपार ना हो नाव फिर चल सकती है नहीं।
नाव में पानी आ जावे डूबने से बच सकती नहीं।।४४।।

अरे ज्ञानी भवसागर में ज्ञान की नाव चलाते हैं।
ज्ञानियों के मनमन्दिर में भवोदधि रह सकता है नहीं।।
भवोदधि में ज्ञानी रहते ज्ञानि की दृष्टि में भव नहीं।
छोड़कर अपने आतम को ज्ञानि का मन लगता न कहीं।। ४५।।

कमल जल में ही रहता है कमल को जल छू सकता नहीं।
कमल का ही स्वभाव ऐसा कि उसको जल छू सकता नहीं।।
कमल पानी में डूबा रहे किन्तु वह सूखा रहता है।
कमल रूखे स्वभाव का है उसे पानी छू सकता नहीं।।४६।।

अरे अस्पर्श स्वभावी जीव करम उसको छू सकते नहीं।
आतमा को छू ले कोई किसी में ऐसी शक्ति नहीं।।
करम उसको छू लें बाँधें करम में ऐसी शक्ति नहीं।
आतमा है अबद्ध–अनछुआ[1] बात यह प्रभो! आपने कही।।४७।।

मैं तो निश्चय से हूँ जीव करम मुझको छू सकते नहीं।
मैं हूँ अबद्धस्वभावी जीव करम से मैं बँध सकता नहीं।।
नहीं मैं करमों को बाँधू नहीं वे करम मुझे बाँधें।
यही है बात अरे परमार्थ और सब बातें हैं व्यवहार।।४८।।

अरे मैं चक्रवर्ती हूँ नहीं अरे मैं निश्चय से हूँ जीव।
चक्रवर्तीपन है पर्याय और मैं हूँ निश्चय से द्रव्य।।
अरे पर्याय तो होती क्षणिक द्रव्य होता अविनाशी नित्य।
द्रव्य में मेरा अपनापन और पर्याय ज्ञान का ज्ञेय।।४९।।

द्रव्य तो रहे निरन्तर नित्य किन्तु आनी–जानी पर्याय।
मैं तो हूँ अनादि का द्रव्य और यह चक्र अभी आया।।
मैं तो रहूँ अनन्ताकाल चक्र की अपनी सीमा है।
मैं तो हूँ असीम भगवान न मेरी कोई सीमा है।।५०।।

---

१. अबद्ध–अनछुआ = अबद्धस्पृष्ट ।

भरत का भारत हो समृद्ध नहीं हो उसमें कोई कमी।
अरे जन-जन में हो वात्सल्य सभी के परिणामों में नमी।।
सभी श्रावक श्रावक का धर्म प्रेम से पालें, सुख से रहें।
धर्मसाधन में ही नित रहें और स्वाध्याय निरन्तर करें।।५१।।

ऋषभ की दिव्यध्वनि का लाभ निरन्तर सबको मिलता रहे।
श्रवण कर सभी करें चिन्तन मनन घोलन अर अनुशीलन।।
और निज आतम को पहिचान उसी के मन्थन में नित रहें।
सभी जन हिल-मिलकर नित रहें न्याय-नीति से वर्तन करें।। ५२।।

रात्रि भोजन कोई ना करे सभी दिन में ही भोजन करें।
छने पानी का ही उपयोग सभी सीमित मात्रा में करें।।
जहाँ तक सम्भव हो सब लोग देवदर्शन-पूजन नित करें।
वीतरागी जिनवाणी का नियम से स्वाध्याय नित करें।। ५३।।

और हिंसा कोई ना करे झूठ भी कोई बोले नहीं।
परिग्रह भी सब सीमित रखें और चोरी कोई न करे।।
किसी की बहिन-बेटियों पर कभी खोटी निगाह ना रखे।
किसी से छेड़छाड़ ना करे स्वयं की मर्यादा में रहे।। ५४।।

दान भी यथायोग्य देवें शास्त्र की मर्यादा अनुसार।
अरे दें अनुद्दिष्ट आहार श्रमण को नवधा भक्ति से।।
श्रावकों को औषधि देवें निरन्तर देवें तत्त्वज्ञान।
अहिंसक जीवन से सबको सदा दें अरे अभय का दान।।५५।।

श्रावकों के बारह व्रत लोग निरन्तर निरतिचार पालें।
धर्म की मर्यादा में रहें स्वयं के चित को समझा लें।।
आतमा में अपनापन रखें जगत से अपनापन तोड़ें।
निरन्तर विषय–कषायों से अरे अपने मन को मोड़ें।। ५६।।

मैं तो यही चाहता हूँ सभी को सब सुविधायें सहज।
सदा उपलब्ध रहें भगवन! सभी का जीवन होवे सहज।।
सभी को जीवनोपयोगी वस्तुओं की उपलब्धि सहज।
प्राप्त हो तत्त्वज्ञान सर्वत्र आतमा की उपलब्धि सहज।। ५७।।

सभी निज आतम को जानें और अपने को पहिचानें।
स्वयं की रुची सभी को हो सभी को जानें पहिचानें।।
सभी की शुद्धभावना रहे धर्म का मर्म सभी जानें।
स्वयं की करें साधना नित्य स्वयं में स्वयं समा जावें।।५८।।

यद्यपि परम सत्य यह बात किसी का कोई कुछ न करे।
किन्तु आये बिन रहते नहीं सभी का हित करने के भाव।।
किसी का हित कर सकते नहीं परन्तु हित करने के भाव।
श्रावकों के जीवन में नित्य निरन्तर आते रहते हैं।।५९।।

यद्यपि कोई किसी को भी अरे ना मार–बचा सकता।
तथापि ज्ञानीजन को भी सदा रहते करुणा के भाव।।
अरे चौथे से छठवें तलक सदा ऐसा ही होता है।
ज्ञानिजन सभी जानते हैं अतः आकुलित नहीं होते।। ६०।।

देख ज्ञानीजन का व्यक्तित्व जगत को ऐसा लगता है।
बात तो ऐसी करते हैं और जीवन कैसा रहता ?।।
कहें वे शुद्धभाव ही धरम शुभाशुभभाव वर्तते हैं।
अरे श्रावक के जीवन में सदा ऐसा ही होता है।।६१।।

जगत को कौन कहे यह बात आपके बिना अरे जिनराज !।
कौन समझावे उनको नाथ अरे सम्यक् निश्चय-व्यवहार।।
सबको नहीं बताते आप तो कोई जान नहीं सकता।
अरे कितनी भी कोशिश करे सत्य पहिचान नहीं सकता।।६२।।

आपकी वाणी में हे नाथ ! ये बातें आतीं रहतीं हैं।
और शास्त्रों में भी तो प्रभो ! यही सब लिक्खा रहता है।।
तथा ज्ञानी गुरुजन भी तो सदा समझाते रहते हैं।
यही कारण है हे जिननाथ ! सभी यह बात जानते हैं।।६३।।

अत: जिनवाणी का स्वाध्याय निरन्तर करते रहना है।
संगति ज्ञानी गुरुओं की निरन्तर हमको करना है।।
देव की पूजन करना है देव की भक्ति करना है।
और निज आतम का श्रद्धान-ध्यान हम सबको करना है।।६४।।

आपने सब विकल्प तोड़े और अपने में ही जम गये।
आप तो निर्विकल्प हो गये आप अपने में ही रम गये।।
आप तो अपने में ही नाथ! जमे सो जमे, जमे ही रहे।
आप तो अपने में हे नाथ! रमे सो रमे, रमे ही रहे।। ६५।।

और आखिर में तुमने नाथ! अनन्तानन्द प्राप्त कर लिया।
नन्त दर्शन अनन्त बीरज अनन्ता ज्ञान प्राप्त कर लिया।।
आप हो गये पूर्ण स्वाधीन आप अरहन्त हो गये हैं।
अरे कृतकृत्य हो गये हैं कि मानों सिद्ध हो गये हैं।।६६।।

आप हैं गुण अनन्त के पिण्ड निरन्तर भोगें परमानन्द।
नहीं है राग-द्वेष का नाम आप हैं वीतराग भगवन्त।।
अरे हे बाहुबली अरिहन्त! आपने पाया भव का अन्त।
आप हैं नन्त वीर्य के धनी परमसुख भोगें काल अनन्त।।६७।।

अरे हे बाहुबली जिनराज! आप तो पहुँचे भव से पार।
आप हैं सर्वश्रेष्ठ जिनराज आपकी महिमा अपरम्पार।।
आपका है अनन्त उपकार आपने बतलाया सन्मार्ग।
आपके बिना बतावे कौन अरे भव से मुक्ति का मार्ग।।६८।।

आपके मारग से जिनराज! हमें भी होना है भव पार।
आपकी महिमा अपरंपार आपको नमस्कार शतबार।।
आपको नमस्कार शतबार आपको नमस्कार शतबार।
भरतजी कहते बारम्बार आपको नमस्कार शतबार।। ६९।।

(दोहा)

इसप्रकार भरतेश ने, भक्तिभाव के साथ।
बाहुबली की स्तुति, करके जोड़े हाथ।।७०।।

अपने मन की भावना, निर्मल मन के साथ।
परगट करके अन्त में, उन्हें नवाया माथ।।७१।।

-●-

भरत का अन्तर्द्वन्द्व

नौवाँ अध्याय

(दोहा)

एक दिवस भरतेश जब, आये थे दरबार।
नमस्कार उनको किया, सबने बारम्बार।। १।।

खड़े हो गये थे सभी, अपने–अपने थान।
एक भरत की ओर था, अरे सभी का ध्यान।।२।।

चर्चा करते थे सभी, जीते हैं षट्खण्ड।
भरतक्षेत्र को किया है, अद्भुत एक अखण्ड।।३।।

तरह तरह केलोग जब, तरह–तरह की बात।
कानाफूसी करत हैं, जिसकी डाल न पात।।४।।

(मानव)

रे भरतक्षेत्र तो जीता, सेना ने सेनापति ने।
पर दुनियाँ तो यह कहती सब जीता भरतेश्वर ने।।
जब बाहुबलि से लड़ने की बात सामने आई।
तब भरतराज जी बोले करना है नहीं लड़ाई।। ५ ।।

तब बिना लड़े ही कैसे जीते भरतेश्वर भाई ?।
मैंने सोचा बहुतेरा पर बात समझ ना आई।।
बलवान भरतजी कैसे मैं किससे पूँछूँ भाई ?।
ऐसी चर्चा जन-जन में कुछ लोगों ने फैलाई।।६।।

जब यह चर्चा भरतेश्वर के कानों में पहुँची थी।
अब मुझे परीक्षा देनी अपने बल की शक्ति की।।
तब स्वयं कनिष्ठा[1] अंगुलि उनने टेढ़ी करली थी।
मन्त्रीगण से वे बोले इसको सीधी करनी है।। ७।।

मन्त्रीगण की कोशिश से टस से मस ना वह अंगुलि।
सेनापति ने की कोशिश पर वह तो रंच हिली ना।।
हाथी घोड़े बुलवाये उनसे उसको खिंचवाया।
परिणाम नहीं कुछ निकला कोई भी हिला न पाया।।८।।

सारी सेना मिलकर भी ना उसे हिला पाई थी।
मुड़ी हुई अंगुलि को ना सीधी कर पाई थी।।
अगले क्षण भरतेश्वर ने सीधी करके बतलाई।
रे पुनः मोड़ ली उसको तब बात समझ में आई।। ९।।

भरतेश्वर की शक्ति का तब सबको ज्ञान हुआ था।
सबके मन की शंकायें क्षणभर में दूर हुईं थीं।।
रे गलत सोचने वालों का तब मन साफ हुआ था।
भरतेश्वर के पौरुष का सबको आभास हुआ था।।१०।।

१. सबसे छोटी अन्तिम उंगली

रे स्वयं हार जाने की कोई आशंका ना थी।
पर आशंका थी मन में यदि हार गये बाहूबलि।।
तो बाहुबलि के मन को जो ठेस लगेगी भारी।
बरदाश्त न कर पाऊँगा मेरा मन होगा भारी।। ११।।

(रेखता)

भाइ के प्रति असीम स्नेह अहिंसा के प्रति गहरी लगन।
भरतजी लड़ने से रुक गये और कोई कारण ना था।।
अधिक क्या कहें नहीं था भाव जीत लेने का भाई को।
अरे मन में था उनको भाव जीतलूँ भाई के मन को।।१२।।

अरे जो कुछ भी जो यह हुआ, हुआ वह इसी भावना से।
और कोई कारण ना था एक कारण बस यह ही था।।
अरे यह जगत जगत ही है कल्पना करता रहे अनेक।
नहीं होता उनमें सत्यांश सत्य ना होती उनमें एक।। १३।।

अरे मैं नहीं हारने दूँगा अपने प्रियतम भाई को।
अरे मैं छोड़ नहीं सकता स्वयं के प्रियतम भाई को।।
भले ही चक्र दाव पर लगे भाई को छोड़ नहीं सकता।
अतः लड़ने से मुख मोड़ा भाई से मोड़ नहीं सकता।। १४।।

भाई को छोड़ नहीं सकता और मुख मोड़ नहीं सकता।
भाई को हरा नहीं सकता भाई से हार नहीं सकता।।
भले ही खेल-खेल में लड़ा और हारा जीता भी हूँ।
युद्ध में हार नहीं सकता युद्ध में जीत नहीं सकता।। १५।।

युद्ध में मुझे उतरना नहीं मुझे तो एक यही था इष्ट।
भाई दीक्षा लेकर चल दे यह भी नहीं मुझे था इष्ट।।
यद्यपि यत्न किया भरपूर किन्तु मैं रोक नहीं पाया।
भाई तो गया, गया सो गया उसे मैं रोक नहीं पाया।।१६।।

भला वह रुकता भी कैसे? उसे तो एक बरस में ही।
सहज होना था केवलज्ञान अतः यह ही क्रमनियमित था।।
और जो होना था वह हुआ विकल्पों से क्या है अब साध्य?।
आतमा ही था उनका साध्य आतमा ही मेरा आराध्य।। १७।।

भले ही यह सब जानूँ किन्तु भाई की याद सताती है।
बहुत कोशिश करता हूँ किन्तु बन्धु को भूल नहीं पाता।।
सभी की काललब्धि आ गई सभी ने दीक्षा ले ली है।
अकेला मैं ही हूँ रह गया कि मेरी लब्धि न आई है।।१८।।

भाइ सब चले गये थे और सभी ने दीक्षा ले ली थी।
अकेले भरतराज रह गये करें क्या समझ नहीं आता?।।
भरत ने चाहा था भरपूर भरत ने समझाया भरपूर।
सफलता रंचमात्र ना मिली समय ऐसा ही आया था।। १९।।

भरत ने मन को समझाया शोक से काम चलेगा नहीं।
गये सो गये, शेष जो बचे उन्हीं को अब सम्भालना है।।
और जो आश्वासन थे दिये उन्हें करके बतलाना है।
शोक में डूबे हैं जो उन्हें मुझे ही तो समझाना है।।२०।।

अरे रे स्वयं समझना है और उनको समझाना है।
स्वयं मारग पर चलना है उन्हें मारग पर लाना है।।
शोक से ऊपर उठना है धैर्य को धारण करना है।
स्वयं ही सब कुछ करना है स्वयं ही सब कुछ करना है।। २१।।

पाँच समवायों के बिन बन्धु! कभी कोइ काम नहीं होता।
अरे यह बात जानता हूँ और श्रद्धान इसी का है।।
निरन्तर घोलन चलता है तत्त्व का चिन्तन चलता है।
अरे फिर भी भाई की याद निरन्तर आती रहती है।। २२।।

तत्त्व का चिन्तन चलता है भाई की याद सताती है।
राज के काज चला करते गृहस्थी चलती रहती है।।
आतमा के अनुभव का रंग निरन्तर चलता रहता है।
अरे सब एक साथ ही चलें आतमा स्थिर रहता है।। २३।।

अरे रे रागरंग के साथ वीतरागी निर्मल पर्याय।
साथ में चलती रहती है अरे चौथे गुणथानक में।।
अरे रे यह दुहरा व्यवहार जगत की समझ नहीं आता।
अरे रे यह अज्ञानी जगत बात को समझ नहीं पाता।। २४।।

भरत ने जो कुछ भी था किया बात अब उसकी करते हैं।
देश को कैसे विकसित किया बात अब उसकी करते हैं।।
अरे जो उनने सोचा था उसी को करके दिखलाया।
अरे कोरी बातें ना करीं सभी को करके बतलाया। २५।।

बाँध बनवाये नदियों पर बिछाया था नहरों का जाल।
नहर खेतों तक पहुँचाई सिंचाई करवाई भरपूर।।
जलाशय बनवाये भरपूर सब जगह पानी ही पानी।
दिखाई देता था सर्वत्र नहीं थी किसी बात की कमी।। २६।।

फलों के बाग-बगीचे खूब लगाये गाँव-गाँव में बन्धु।
और हरयाली से भरपूर कराया सारे भारत को।।
स्वास्थ्य सेवायें दीं भरपूर नहीं थी कमी दवाओं की।
खाद्य सामग्री की कोइ कमी नहीं भारत में रहने दी।। २७।।

रास्ते पूरव से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक।
बनाये थे लम्बे-चौड़े और मजबूती थी भरपूर।।
अरे रे लूट-पाट से रहित सुरक्षित पथ बनवाये थे।
अरे भरपूर किये थे इन्तजाम सम्पूर्ण सुरक्षा के।। २८।।

(विष्णु)[१]

थान-थान पर खान-पान की शुद्ध व्यवस्थायें।
राहगीर को उचित मूल्य पर मिल जाया करतीं।।
मध्य राह में थान-थान पर सारी सुविधायें।
सब राहों पर मिल जाती थीं सभी व्यवस्थायें।। २९।।

करना हो विश्राम पथिक को विश्रामालय थे।
उचित मूल्य पर सब सुविधायें सहज प्राप्त होतीं।।
की जा सकती सहजभाव से सारी यात्रायें।
और प्राप्त कर सकते थे सबजन सब सुविधायें।। ३०।।

१. कहाँ गये चक्री जिन जीता...... की लय पर गायें।

कमी नहीं थी किसी बात की सब सुविधायें थीं।
और सभी जन थे समृद्ध न कोइ गरीबी थी।।
लूट-पाट थी नहीं सभी को सब कुछ था उपलब्ध।
और वहाँ के सब जन सज्जन सहज भाव से थे।। ३१।।

जात-पात की ऊँच-नीच की बात न कोई थी।
धर्म-कर्म की कोइ बाध्यता नहीं कहीं भी थी।।
सभी लोग स्वाधीन स्वयं ही सब चुन सकते थे।
खेती-बाड़ी धन्धा-पानी सब कर सकते थे ।। ३२।।

मन्दिर और धर्मशालायें थान-थान पर थीं।
परम पवित्र पाठशालायें थान-थान पर थीं।।
स्वाध्याय की सब सुविधायें थान-थान पर थीं।
अस्पताल औषध-शालायें थान-थान पर थीं ।। ३३।।

रे अखण्ड भारत में भाई! यह सब सम्भव था।
और भरत की भव्य भावना का मधुरिम फल था।।
अधिक कहें क्या अरे सभी का जीवन सुखमय था।
और भरत के भारत में ही यह सब सम्भव था।। ३४।।

अरे भरत के भारत में ही यह सब सम्भव था।
सर्वोदय के दृष्टिकोण से यह सब सम्भव था।।
सभी सुखी थे सब प्रकार से लौकिक दृष्टि से।
और अलौकिक दृष्टि से भी सबको अवसर था।। ३५।।

(रेखता)

अरे रे यह सब करते हुये भरत अपनों को ना भूले।
भाइयों को ना भूले थे और ना माँ को थे भूले।।
पत्नियों को ना भूले थे और ना बच्चों को भूले।
और ना जन–जन को भूले और ना आतम को भूले।। ३६।।

और ना भूले आतम को नहीं परमातम को भूले।
अरे सब ओर सहजता थी कहीं ना कोइ कमी आई।।
सभी व्यवहार निभाये हैं और निश्चय भी है साधा।
सभी को एक साथ साधा कहीं ना आ पाई बाधा।। ३७।।

सभी ज्ञानीजन का जीवन अरे चौथे गुणथानक में।
इसतरह ही चलता है सदा नहीं आती कोई बाधा।।
भरत का जीवन है आदर्श अरे चौथे गुणथानक का।
वे घर में रहे ना रहे एक रहस यह उनके जीवन का।।३८।।

अरे उनमें अद्‌भुत क्षमता अरे उनमें अद्‌भुत समता।
अरे वे हैं पौरुष के पिण्ड और अपने में प्रबल प्रचण्ड।।
अरे हैं धीरज के वे धनी नहीं हैं उनमें कोई कमी।
अरे वात्सल्य भाव से भरे भरत के अन्तर में है नमी।। ३९।।

अरे उनकी महिमा हे बन्धु! बताओ अब हम कैसे करें ?।
और उनकी प्रतिभा के गीत कहाँ तक गायें अब यह कहो।
प्रजा थी पूरी तरह प्रसन्न और खुशहाली थी भरपूर।
देखने लायक थे सब कार्य देखने लायक मुख का नूर।। ४०।।

देखने लायक था उत्साह देखने लायक थे सत्कर्म।
देखने लायक उनके कर्म देखने लायक उनका धर्म।।
देखने लायक था श्रद्धान देखने लायक सम्यग्ज्ञान।
देखने लायक निज में रमन देखने लायक आतमध्यान।।४१।।

भरतजी दर्शनीय हो गये भरतजी वन्दनीय हो गये।
अकेले अपने ही न रहे अरे वे तो सबके हो गये।।
अरे वे तो सबके हो गये सभी का हित करने वाले।
किसी का नहीं चाहते अहित महामंगल करने वाले।। ४२।।

महामंगल का पावन पन्थ उन्होंने जग को बतलाया।
न केवल जग को बतलाया स्वयं भी वह ही अपनाया।।
स्वयं भी चले सहज सर्वांग न कोई कमी दिखाई दी।
अरे था जीवन में सर्वांग सन्तुलन सहज सहजता थी।।४३।।

(वीर)

जल से भरे कलश रख बहिनें तीन-तीन निज माथे पर।
गप्पें खूब लगाया करतीं घन्टों खड़ी-खड़ी रहकर।।
जिस तरह रहे मन माथे पर बस उसी तरह ज्ञानीजन भी।
जग में व्यस्त बहुत रहते पर नित रहते निज आतम में।।४४।।

ज्यों गायें जंगल में चरती रहती हैं रे सारे दिनभर।
पर ध्यान सदा रहता उनका अपने-अपने प्रिय बछडों पर।।
त्यों ज्ञानीजन घर में रहकर सब कारज करते रहते हैं।
पर ध्यान सदा ही रहता है निज नित्य निरंजन आतम में।।४५।।

ज्यों पत्नी दिनभर व्यस्त रहे दुनियादारी के कामों में।
पर उसका ध्यान लगा रहता है नित्य निरन्तर प्रियतम में।।
त्यों ज्ञानीजन भी राजकाज के कामों में उलझे रहते।
पर उनका ध्यान लगा रहता अपने प्रियतम निज आतम में।।४६।।

परिजन पुरजन के कामों में पत्नी एवं सन्तानों में।
सारी जनता के कामों में एवं समाज के कामों में।।
भरतेश्वर भी उलझे रहते थे राज–काज के कामों में।
किन्तु सदा जाग्रत रहते वे आतमहित के कामों में।।४७।।

अत्यन्त लोकप्रिय शासक थे सबके हित में संलग्न सदा।
सबके मानस में बसे हुये सचमुच ही सच्चे मानव थे।।
मानवता सज्जनता उनकी सबका हित करनेवाली थी।
आतमरुचि वृत्ति प्रवृत्ति सब आतमहित करने वाली थी।।४८।।

उनकी यह वृत्ति–प्रवृत्ति सब ज्ञानी के होती वैसी थी।
उनकी यह जीवनधारा तो मानो अमृत की धारा थी।।
वह अमृतधारा तो जैसे सब रोग मिटानेवाली थी।
मानो अमृत की प्याली थी आतमहित करने वाली थी।।४९।।

आतमहित के साथ सभी व्यवहार निभाने वाले थे।
छल दम्भ द्वेष से रहित सदा उत्कृष्ट भावना वाले थे।।
वे अच्छे–बुरे सभी लोगों को सदा निभाने वाले थे।
अधिक कहें क्या इसी देह से मुक्ति पाने वाले थे।।५०।।

मुक्ति में जाने वाले थे अपने में रमने वाले थे।
अपने में जमकर रमकर वे सच्चा सुख पाने वाले थे।।
यह सबकुछ सहज निरन्तर था अपने में जाने वाले थे।
जो कुछ था वह सब क्षणभर में सर्वस्व लुटाने वाले थे।।५१।।

(दोहा)

इसप्रकार भरतेश ने, क्या बालक क्या वृद्ध।
सबकी ही सेवा करी, कर भारत समृद्ध।। ५२।।

भरतक्षेत्र के खण्ड सब, हुये अखण्डित एक।
इसप्रकार विकसित हुये, कमी रही ना एक।। ५३।।

गरिमा से भरपूर सब, आन बान अर शान।
सबको रोटी प्राप्त थी, कपड़ा और मकान।। ५४।।

भरतेश्वर के गीत सब, गाते थे दिन-रात।
सबके मुख से निकलती, अरे एक ही बात।। ५५।।

भरतेश्वर की कृपा से, कमी नहीं है कोइ।
सहज सुखी सब लोग हैं, दुखी नहीं है कोइ।।५६।।

सभी लोग सन्तुष्ट थे, दुख की कोई न बात।
सभी लोग भरतेश के, गुण गाते दिनरात।। ५७।।

इसीतरह सुख-शान्ति से, बीत रहा था काल।
काललब्धि आगई थी, भरतराज की आज।। ५८।।

-●-

भरत का अन्तर्द्वन्द्व
दशवाँ अध्याय

(दोहा)

वृषभसेन की शरण में, बैठे थे भरतेश।
समाचार आया तभी, मुक्त हुये वृषभेश।। १।।

ऋषभदेव मुक्ति गये, भरत शोक सन्तप्त।
वृषभसेन समझा रहे, नहीं शोक उपयुक्त।। २।।

तुमसे ज्ञानी जीव को, अच्छा लगे न शोक।
तुम स्वभाव से ही सहज, तुम हो सहज अशोक।।३।।

(रेखता)

भरत ! तुम सभी जानते हो भरत तुम सम्यग्ज्ञानी हो।
मोक्ष में जाने वालों का इसतरह शोक नहीं करते।।
सम्भालो होश ज्ञानिजन तो इसतरह होश नहीं खोते।
और मूर्छित होकर के वे कभी बेहोश नहीं होते।।४।।

हो गया अरे कौन सा गजब अरे यह तो होना ही था।
अरे उनका होना है मोक्ष यह हम सभी जानते थे।।
अरे तुमने दुनियाँ देखी और तुम सम्यग्दृष्टी हो।
और तुम चरमशरीरी हो मोक्ष में जाने वाले हो।।५।।

आज क्यों विह्वल होते हो? आज तुम धीरज मत खोओ।
आज तक धीरज खोया नहीं, आज क्यों धीरज खोते हो ?।।
तुम्हें तो स्वयं समझना है और सबको समझाना है।
भरत तुम शान्त रहो भाई! और धीरज रख कर सोचो।।६।।

अरे अब समय तुम्हारा भी सहज ही आया समझो बन्धु !।
समय पर दीक्षा लेने की बात तुम भी सोचो अविलम्ब।।
प्रभु श्री ऋषभदेव तो गये प्रेरणा लोगे अब किससे।
तुम्हें तो स्वयं सोचना है स्वयं सब निर्णय करना है।। ७।।

तुम तो समझदार हो स्वयं अधिक क्या तुमसे कह सकता ?।
समय जाता है तेजी से नहीं वह रोके से रुकता।।
और इस मानव जीवन का अरे अधिकांश भाग तो गया।
क्षणिक इस मानव जीवन का केवल अंशमात्र रह गया।।८।।

(विष्णु[१])

चले गये सब लोग आप घर में ही उलझे हैं।
जन-जन में उलझे रहे आप अबतक ना सुलझे हैं।।
सब लोग गये पर आप देशसेवा में उलझे हैं।
सब आतमहित में लगे आप अबतक ना सुलझे हैं।। ९।।

परम सत्य यह बात भरत के अन्तर में चुभ गई।
वृषभसेन की बात भरत के अन्तर में लग गई।।
लगे सोचने भरत मुझे आतम अपनाना है।
छोड़ जगत के कार्य मुझे अन्तर में जाना है।। १०।।

---

१. कहाँ गये चक्री जिन जीता...... की लय पर गायें।

वृषभसेन की समझाहट से भरत हुये गम्भीर।
और रातभर रहे सोचते भवसागर के तीर।।
जाना है अतिशीघ्र मिटाना है इस भव की पीर।
चिन्तन में चढ़ गये भरतजी धीर-वीर-गम्भीर।। ११।।

सूर्योदय के होते ही सबको बुलवाया है।
दीक्षा लेने के भाव हुये सबको बतलाया है।।
अर्ककीर्ति को आदिराज को सब समझाया है।
अर्ककीर्ति को राजतिलक कर पास बुलाया है।। १२।।

आदिराज को अरे सुनो युवराज बनाया है।
और सभी को यथायोग्य सब काम बताया है।।
सबको कर सन्तुष्ट भरतजी स्वयं साधु हो गये।
अन्तर में ही मग्न भरतजी अपने में रम गये।।१३।।

अपने में रम गये भरतजी अपने में जम गये।
अपनेपन के साथ अपन में रमे, रमे सो रमे।।
अपनेपन के साथ अपन में जमे, जमे सो जमे।
समाधिस्थ हो गये समाये आतम में ही रहे।। १४।।

मुनि होने के बाद भुजबलि खड़े-खड़े ही रहे।
शुद्धोपयोग में गये किन्तु दो घड़ी[१] नहीं रुक सके।।
बन न सके सर्वज्ञ ध्यान में बारह माह लगे।
बारह माह के बाद हि वे केवलज्ञानी बन सके।।१५।।

१. घड़ी माने २४ मिनट। एक मुहूर्त दो घड़ी का होता है।

प्रथम जिनेश्वर ऋषभदेव को सहस्त्र वर्ष थे लगे।
केवलज्ञानी होने में यह सभी जानते हैं।।
किन्तु प्रभु भरतेश्वर तो अन्तरमुहूर्त्त में ही।
केवलज्ञानी हुये जगत जन उन्हें देखते रहे।।१६।।

पौरुष के वे पिण्ड भरत जब जिस कारज में लगे।
सफल सदा ही रहे कहीं भी असफल वे न रहे।।
उन्हें बड़ी से बड़ी समस्या विचलित ना कर सकी।
शान्तभाव से धीरज से वे सभी निबटती रहीं।। १७।।

आतम के अनुभवी जनम से जबतक घर में रहे।
भरपूर अपरिमित भोगों के भी बीच अलिप्त रहे।।
सबके होकर, नहीं किसी के, वे अपने में रहे।
अविरत सम्यग्दृष्टि नाम के गुणथानक में रहे।। १८।।

(रेखता)

रहे जब वे भोगों के बीच भोग भोगे थे उनने खूब।
और पाया था केवलज्ञान मात्र दो ही घड़ियों के बीच।।
रहे थे भोगों में भी टॉप योग में भी थे वे ही टॉप।
वे तो सदा टॉप पर रहे कभी भी आगे-पीछे नहीं।।१९।।

भरतजी सदा टॉप पर रहे सभी कामों में आगे रहे।
भोग में भी वे आगे रहे योग में भी वे आगे रहे।।
सदा जो रहें कर्म में शूर धर्म में भी वे रहते शूर।[1]
भरतजी उनमें से ही थे सभी कामों में थे भरपूर।।२०।।

१. जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा

उन्होंने राजकाज के साथ भोग भी भोगे थे चिरकाल।
अरे शुद्धोपयोग में किन्तु सफलता पाई थी तत्काल।।
भले ही राजकाज सब किये आतमा के ही साधक थे।
और अपने श्रावकपन में आतमा के आराधक थे।। २१।।

अरे जिनके होते हैं सूक्ष्म अरे रे योग और उपयोग।
सहज ही होता है एकाग्र होने की क्षमता का संयोग।।
सफल होते हैं वे सर्वत्र कहीं भी असफल ना होवें।
निशाना हो अचूक ही सदा कहीं भी क्यों न लगावे वे?।। २२।।

अरे स्थिर थे उनके योग और अत्यन्त सूक्ष्म उपयोग।
भरत थे घर में ही योगी और था उपयोगी उपयोग।।
अरे दोनों ही वश में रहे उनके योग और उपयोग ।
अधिक क्याकहें बताओ उन्हें मिला था यह अद्भुत संयोग।। २३।।

अतः वे दुनियादारी में सदा ही अव्वल आते रहे।
आतमा में भी जब वे जमे तब वे जमे-रमे ही रहे।।
अरे दुनियाँ तो करती रही राग वे पूर्ण राग त्यागी।
अरे वे बन करके भगवान बने सर्वज्ञ-वीतरागी।। २४।।

अरे अन्तर्द्वन्दों के बीच अभी तक उलझे थे भरतेश।
किन्तु अब सब द्वन्दों से पार हो गये हैं जिनवर भरतेश।।
अरे रे दिव्यध्वनि द्वारा सदा होता उनका उपदेश।
सहज ही समझाते सब बात नहीं देते कोई आदेश।। २५।।

अरे भगवान भरत ने कही एक आतम–अनुभव की बात।
बताई सारी दुनियाँ को अकर्त्तापन की अद्‌भुत बात।।
अनन्ते द्रव्य जगत में हैं किसी का कोई कुछ ना करे।
सभी अपने–अपने कर्त्ता सभी अपने को ही भोगें।। २६।।

सभी हैं न्यारे–न्यारे द्रव्य किसी का ना है कोई भाई।
सभी हैं अपने में परिपूर्ण किसी में नहीं कमी कोई।।
अरे रे परद्रव्यों से लेन–देन की बात गुलामी है।
अरे रे सभी द्रव्य स्वाधीन स्वयं के ही सब स्वामी हैं। २७।।

अरे है यह निश्चय की बात न इसमें कुछ भी संशय है।
यही है परम सत्य परमार्थ भरतजी ने बतलायी है।।
अरे रे यही एक भूतार्थ और सब अभूतार्थ जानो।
कथन जो कुछ भी आता हो सभी व्यवहार कथन मानो।। २८।।

आत्मा को जानो हे भव्य उसी में अपनापन तुम करो।
उसी का ज्ञान उसी का ध्यान नित्य उसमें ही तुम रत रहो।।
अनन्तानन्त गुणों का पिण्ड ज्ञान आनन्द स्वभावी है।
उसमें हैं असंख्यपरदेश[1] किन्तु वह तो अखण्ड ही है।। २९।।

देह में रहे देह से भिन्न अरे यह अरस अरूप अगन्ध।
अरे भगवान आतमा का नहीं पर से कुछ भी सम्बन्ध।।
यद्यपि इसमें उपजे राग किन्तु यह रागरूप है नहीं।
अरे यह ज्ञानानन्द स्वभाव किन्तु गुणभेद रूप है नहीं।। ३०।।

---

१. असंख्यप्रदेश

(विष्णु)[१]

परमशुद्धनिश्चयनय का जो विषय आतमा है।
श्रद्धा का श्रद्धेय ध्यान का ध्येय आतमा है।।
जो पर्यायों से पार ज्ञान–आनन्द स्वभावी है।
परम पारणमिकभाव स्वयं चैतन्य स्वभावी है ।। ३१।।

उसमें ही अपनापन निश्चय सम्यग्दर्शन है।
निजरूप जानना ज्ञान आतमा का अभिनन्दन है।।
अरे उसी में जमना–रमना और समा जाना।
लीन और तल्लीन यही है ध्यान आतमा का।। ३२।।

अपनेपन के साथ निरन्तर सहज स्वयं को ही।
सहजभाव से बिन तनाव के नित्य निरन्तर ही।।
निर्विकल्प हो सहज जानते रहना अनुभव है।
यही ज्ञान है यही ध्यान है यही समाधी है।। ३३।।

यह ही है शुद्धोपयोग यह अन्तर्मुख वृत्ति।
यह ही है संसारजाल से पूरी निरवृत्ति।।
यह ही है निश्चय मुक्तिमार्ग यह निश्चय मुक्ति है।
इसे छोडकर इस जग में ना कोई मुक्ति है।। ३४।।

सहजभाव से ही होते हैं ज्ञान–ध्यान–श्रद्धान।
रे तनाव का काम नहीं है और ना आकुलता।।
शान्तभाव ही परम धरम है शान्तभाव जीवन।
शान्तचित्त[२] को सभी एक से जीवन और मरन।। ३५।।

१. कहाँ गये चक्री जिन जीता...... की लय पर गायें।
२. जिसका चित्त शान्त है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को

हे भव्य! ध्यान से सुनो सहज जीवन ही समता है।
करने–धरने के विकल्प ही बड़ी विषमता है।।
जो कुछ होता शान्तभाव से हमें जानना है।
जानन–देखन हारा हूँ – बस यही मानना है ।। ३६।।

कुछ भी करना नहीं बोलना और सोचना नहीं।
निर्विकल्प हो शान्तभाव से सहज जानना सही।।
अगर दो घड़ी शान्तभाव से ऐसे ही रह सकें।
होगा केवलज्ञान सुनिश्चित सहज जानते रहें।। ३७।।

बस सहज जानते रहना है कुछ और नहीं करना।
अपने में ही जमना रमना कुछ और नहीं करना।।
कुछ विकल्प ना करना है बस निर्विकल्प रहना।
इतना ही मुक्तिमारग है अर मुक्ति भी इतनी ।। ३८।।

भरत जिनेश्वर ने जग को मुक्तिमग बतलाया।
बस लगातार अन्तर्मुहूर्त्त तक अन्तर में रहना।।
यदि लगातार अन्तर्मुहूर्त्त तक अन्तर में न रहे।
तो केवलज्ञान नहीं होगा चाहे जो कुछ कर लो।। ३९।।

और अकर्त्ताभाव बिना आतम अनुभव करना।
सम्भव होता नहीं भरत जिनवर का यह कहना।।
जो कुछ होना सब नक्की वह बदल नहीं सकता।
ऐसा माने बिना अकर्त्ताभाव नहीं होता ।। ४०।।

और अकर्त्ताभाव बिना शुद्धोपयोग न हो।
शुद्धोपयोग के बिना कर्म का नाश नहीं होता।।
अगर घातिया नष्ट ना हों तो केवलज्ञान न हो।
और केवली हुये बिना अरहन्त नहीं होते ।।४१।।

तथा केवली होने से अरहन्त हो गये हैं।
परम वीतरागी जिनेन्द्र सर्वज्ञ हो गये हैं।।
हित-उपदेशक भरतराज भगवन्त हो गये हैं।
अनन्त चतुष्टय के धारक जयवन्त हो गये हैं ।। ४२।।

अरे अघाती करम भरत के नष्ट हो गये हैं।
इस कारण भरतेश सिद्ध भगवन्त हो गये हैं।।
अरे अनन्तानन्त परमसुख का आवेगा पूर।
और अनन्तानन्त काल तक भोगेंगे भरपूर।।४३।।

मुक्ति गये भरतेश उन्हें हम वन्दन करते हैं।
उनके गृहस्थ जीवन का हम अभिनन्दन करते हैं।।
वे विवेक के धनी उन्हीं के मग पर चलते हैं।
वे रहे निरन्तर शान्त उन्हें अभिवादन करते हैं।।४४।।

(रेखता)

अरे वे जब तक घर में रहे मानो रहे ना रहे एक।
निरन्तर आतम में ही रहे उसे न भूले वे क्षण एक।।
सभी के प्रति अपने कर्त्तव्य निभाते रहे निरन्तर वे।
किन्तु अपने को भूले नहीं स्वयं में डूबे रहे सदैव।। ४५।।

स्वयं में डूबे रहे सदैव इसी से थे इकदम तैयार।
उन्होंने दीक्षा ली तत्काल एक अन्तर्मुहूर्त में ही।।
हो गया उनको केवलज्ञान उन्होंने सारा जग जाना।
कहाँ तक महिमा उनकी करें जगत ने उनको पहिचाना।। ४६।।

परमसुख भोगें नन्तानन्त अनन्तानन्त काल तक वे।
अरे अपने में ही थिर रहें अनन्तानन्त काल तक वे।।
अनन्त दर्शन अनन्त वीरज अनन्तानन्त ज्ञानमय वे।
भरत भगवन्त हो गये सिद्ध स्वयं में ही हैं सबकुछ वे।।४७।।

पाँच सौ इकसठ छन्दों का ग्रन्थ यह इसमें अन्तर्द्वन्द।
भरत के अन्तर का यह द्वन्द ज्ञानियों का है अन्तर्द्वन्द।।
भरत के जीवन की यह कथा सभी को प्रेरित करती है।
'आतमा को भूलो मत कभी' – बात यह सबसे कहती है।।४८।।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ, भरत का अन्तर्द्वन्द।
सब द्वन्दों से पार हो, हुए सिद्ध भगवन्त।। ४९।।

उनका पावन चरित यह, पढे–सुने जो कोय।
परम शान्ति को प्राप्त हो, दुविधा रहे न कोय।।५०।।

अरे चित्त की शान्ति ही, है जीवन का सार।
इसे प्राप्त कर जीव सब, होते भव से पार।। ५१।।

(सोरठा)

सत्ताईस जुलाइ, मोक्ष सप्तमी के दिना।
सोमवार सन् बीस, को यह पूरण हुआ है।। ५२।।

–●–

श्री भरत-बाहुबली पूजन

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

श्री भरत-बाहुबली पूजन

(स्थापना)

(कुण्डलिया)

भरत और बाहुबली, वीतराग–सर्वज्ञ।
हित–उपदेशक लोक में, नमें तुम्हें मर्मज्ञ।।

नमें तुम्हें मर्मज्ञ आतमा के आराधक।
सम्यग्ज्ञानी जीव आतमा के जो साधक।।
अज्ञानीजन अरे आपको ना पहिचानें।
सम्यग्दृष्टि जीव जिनेश्वर तुमको जानें।।१।।

ॐ ह्रीं श्री भरत–बाहुबलिस्वामिनौ अत्र अवतरत–अवतरत संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री भरत–बाहुबलिस्वामिनौ अत्र तिष्ठत–तिष्ठत ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री भरत–बाहुबलिस्वामिनौ अत्र मम सन्निहितौ भवत–भवत वषट्।

(रेखता)

जल

प्रभो ! यह निर्मल जल अम्लान आपके चरणों में अर्पित।
प्यास की बाधा होवे शान्त होय हमको आतम अनुभव।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।१ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां जन्म–जरा–मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

प्रभो ! शीतल चन्दन अनुपम आपको अर्पण करता हूँ।
कषायों की गर्मी हो शान्त और जीवन में हो संयम।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।२।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अनोखे अक्षत अक्षत हैं आपको करते हम अर्पण।
अरे अक्षय पद की हो प्राप्ति विकारों का होवे तर्पण।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।३।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

प्रभो ! अत्यन्त मनोहर पुष्प कल्पतरु से हम लाये हैं।
और होकर हम विषय–विरक्त चरण वन्दन को आये हैं।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।४।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

क्षुधानाशक मधुरिम पक्वान्न कहे जाते हैं दुनियाँ में।
किये सेवन हमने भरपूर क्षुधा न शान्त हुई अबतक।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीभरतबाहुबलिस्वामिभ्यां क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

प्रभो ! हो अन्धकार का नाश दीप रत्नों के लाये हैं।
किन्तु मोहान्धकार का नाश नहीं होता इनसे जग में।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभरतबाहुबलिस्वामिभ्यां मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित धूप लेकर हम आये हैं।
आज तक एक कर्म भी नाश नहीं इससे कर पाये हैं।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभरतबाहुबलिस्वामिभ्यां अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

मुक्तिफल पाने को हे नाथ ! मधुर फल लेकर आये हैं।
अफल ही सिद्ध हुये ये सभी मुक्ति के न मिल पाने से।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभरतबाहुबलिस्वामिभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

अनर्घपद की आशा से प्रभो ! सभी द्रव्यों को शामिल कर।
अरे यह अर्घ्य बनाकर नाथ ! अनेकों बार चढ़ाया है।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज ! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।।९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभरतबाहुबलिस्वामिभ्यां अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

मोक्ष गये युग आदि में, भरत–बाहुबलि नाथ!।
उनकी पूजन भक्ति से, जीवन हुआ सनाथ।।१।।

(रेखता)

भरत–बाहुबलि का जीवन देखकर धन्य हो गये हम।
अरे उनके जैसा जीवन दिखाई दिया हमें न अन्य।।
अरे वे जब दोनों ही भाई साथ में घर में रहते थे।
उनमें था अपार स्नेह और थे दो देहों में एक।।२।।

साथ में खेला करते थे साथ में खाया करते थे।
कहीं भी जाना हो तो भाई! साथ में जाया करते थे।।
अरे हम दोनों के ही भगत और दोनों के गायक हैं।
आप दोनों ही भाई नाथ ! अरे हम सबके नायक हैं।।३।।

आपने बतलाया सबको सभी अपने–अपने नायक।
न कोई नायक गायक है सभी के सब बस ज्ञायक हैं।।
आप जबतक इस घर में रहे अरे अविरतसमदृष्टि रहे।
यद्यपि थे क्षायिकसमदृष्टि किन्तु अणुव्रत धारण न करे ।।४।।

क्योंकि अरे शलाकापुरुष कभी अणुव्रत धारण न करें।
अरे वे जब भी धारण करें महाव्रत ही वे धारण करें।।
आप दोनों पौरुष के पिण्ड नहीं थी शक्ति की कोई कमी।
नहीं थी कोई कमजोरी अरे फिर अणुव्रत क्यों धारे।।५।।

आपने जब संयम धारा अरे निज पौरुष के बल से ।
और जब हुये ध्यान में खड़े तो बाहर को झाँके ही नहीं ।।
भले ही एक वर्ष लग गया बाहुबलि आसन से न डिगे ।
भरत तो अन्तर में जब गये, गये फिर बाहर आये नहीं ।।६।।

अरे इस अद्भुत जोड़ी की होड़ कोई कर सकता नहीं।
अरे दोनों भाई बेजोड़ होड़ की बात नहीं कोई।।
अरे दोनों पौरुष के पिण्ड अलौकिक संयमधारी थे ।
कहाँ तक उनकी महिमा करें परम संयम के धारी थे ।।७।।

आपने किये घातिया नाश आप अरहन्त हो गये हैं।
हुये हैं पूर्ण वीतरागी आप सर्वज्ञ हो गये हैं।।
आपके द्वारा दुनिया को मिला था हितकारी उपदेश ।
इसलिये हे जिनवर भगवान ! आप भी थे देवों के देव ! ।।८।।

आठ गुण से मण्डित हे नाथ ! आप जयवन्त हो गये हैं ।
अनन्तानन्द ज्ञान के पिण्ड सिद्ध भगवन्त हो गये हैं।।
अनन्त दर्शन अनन्त वीरज अनन्तानन्त ज्ञानमय आप ।
सदा सुख भोगेंगे हे प्रभो ! अनन्तानन्त कालतक आप ।।९।।

(दोहा)

भरत और बाहुबली, होगय भव से पार।
और हमारा भी प्रभो! शेष नहीं संसार।।१० ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

यह असार संसार, अरे आपकी कृपा से।
हम होंगे भव पार, अल्पकाल में ही प्रभो।।११।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन में सहयोगी

श्रीमती रतनदेवी पाटनी

श्रीमान अशोकजी पाटनी

श्रीमती आरतीजी पाटनी

रुचिका पाटनी-रितिका पाटनी

कोलकाता-सिंगापुर

साज-सज्जा

संजय शास्त्री

सर्वोदय अहिंसा

जयपुर